जिनेन्द्र दर्शन :
जिनेन्द्र पूजन

लेखक

प.पू.आ.श्री १०८ विरागसागर जी महाराज

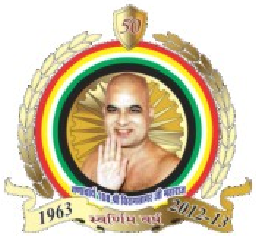

प्रकाशक

(सम्यग्ज्ञान प्रकाशन विभाग)

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज की स्र्वणिम जयन्ती, यति सम्मेलन व युग प्रतिक्रमण के अवसर पर

कृति : जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन

लेखक : परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागरजी महाराज

पुण्यार्जक: श्री विजयकुमार एवं श्रीमती संगीता जैन
सुपुत्र श्री भागचन्द जैन एवं श्रीमती मैनादेवी जैन
मैसर्स : भागचन्द विजयकुमार जैन
जूनियां गेट, केकड़ी (अजमेर)

संस्करण : ग्यारहवाँ (प्रतियां 2000), जयपुर 2012

सहयोग : पं. धन्यकुमारजी राजेश (संघस्थ)

मूल्य : 10 रूपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्रकाशक : श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ,
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

मुद्रक : अरिहंत ऑफसेट एण्ड कम्पयूटर्स,
अजमेरी गेट, केकड़ी (अजमेर–राज.)
मो. 9252060486

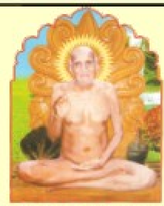

आचार्य श्री 108 विमल सागरजी महाराज

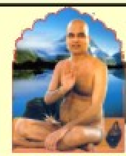

प. पू. गणाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज

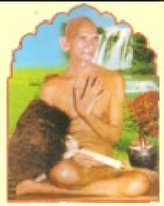

आचार्य श्री 108 सन्मतिसागरजी महाराज

जीवन बिन्दु

पूर्व नाम	: अरविन्द जैन (टिन्नू)
जन्म	: 2 मई 1963, शुक्रवार
माता–पिता	: श्रीमती श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ आ. विशांत श्री माताजी) श्रीमान् कपूरचंदजी जैन (संघस्थ प.पू. गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज)
बहिन	: श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन
भाई	: श्री विजयकुमार, श्री सुरेन्द्रकुमार, बा.ब्र. श्री नरेन्द्रभैयाजी
लौकिक शिक्षा	: इण्टर, मध्यमा (पथरिया, श्री शान्ति निकेतन, दि. जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	: 20 फरवरी 1980 (फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुद्धार, शहडोल)
नामकरण	: पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्ण सागरजी महाराज
क्षु.दीक्षा गुरू	: परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य 108 सन्मति सागरजी महाराज
मुनि दीक्षा	: 9 दिस. 1983 (मगसर शु. 5, विं.सं. 2040 औरंगाबाद (महा.)
नामकरण	: प.पू. मुनि श्री 108 विरागसागरजी महाराज
मुनि दीक्षा गुरू	: प.पू. वात्सल्य दिवाकर आचार्य श्री 108 विमल सागरजी महाराज
आचार्य पद	: 8 नव. 1992 (कार्तिक शु. 13 वि.सं. 2049, रविवार, द्रोणगिर)
संयम सृजन	: आचार्य – 8, मुनि – 51, आर्यिका – 47, ऐलक – 5, क्षुल्लक – 30, क्षुल्लिका – 20 तथा ब्रह्मचारी भाई–बहिनें – 50
समाधिसल्लेखनाऐं	: 35
चातुर्मास	: 1980 से 2011 तक क्रमश : दुर्ग (छत्तीस), कारंजा (लाड–महा.), कारंजा (लाड–महा.) नागपुर (महा.), भावनगर (गुज.), पांचवा (राज.), निमाज (राज.) जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.) श्रेयांसगिरी (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.) बीना (म.प्र.), ललितपुर (उ.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), शिखरजी (झारखण्ड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छत्तीस), कारंजा (लाड – महा.), मूढबिद्री (कर्ना), मेलचितामूर (तमिल.), उदगांव (महा.) मुम्बई (महा.), गांधीनगर (गुज.), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.)

आचार्य श्री विमलसागरजी का अंतिम आशीर्वचन आचार्य श्री विरागसागरजी को

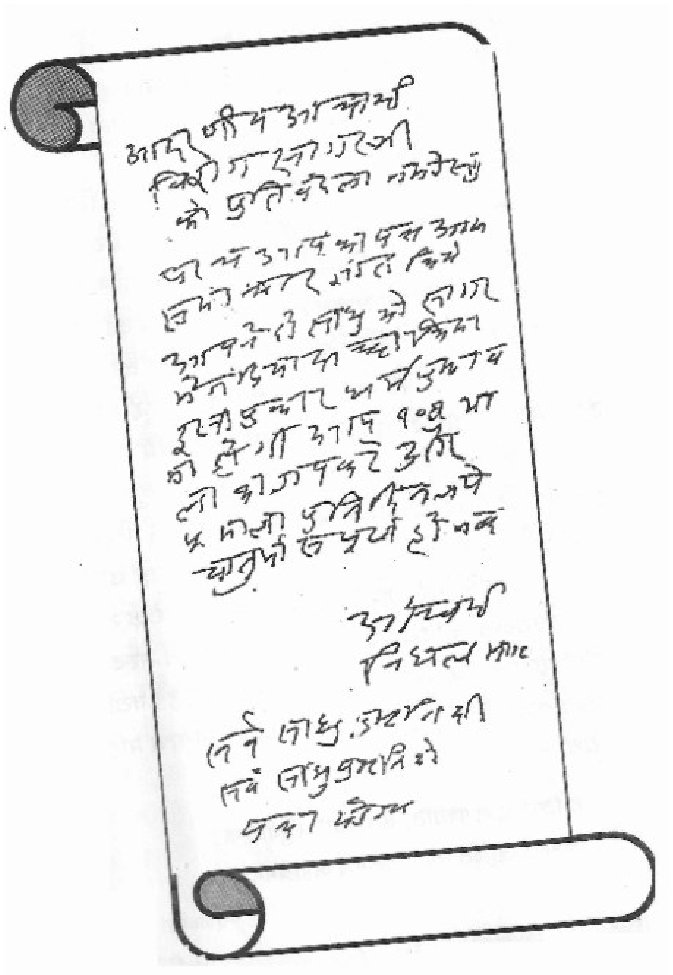

विचार बिन्दु

जिन बिंब दंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स
विमिच्छत्तादि कम्मरूलावस्स खय दंसणादो।

— (धवला)

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से निधत्ती और निकाचित्त और मिथ्यात्व आदि कर्म मल का क्षय देखा जाता है। जिनेन्द्र दर्शन संपूर्ण पापों को नष्ट करने वाला स्वर्ग की सीढ़ी तथा मोक्ष का साधन है। जब दर्शन मात्र की इतनी महिमा है तो क्यों न हम जिन दर्शन करने की विधि को जानें, समझें—यह भावना मेरे मन में 1987 से प्रारम्भ हुई थी और उस समय एक छोटी सी पुस्तिका **''जिन दर्शन विधि''** के **नाम से** तैयार की थी। जयपुर वर्षायोग में परम पूज्य गुरूदेव के शुभाशीष से उसका प्रकाशन भी हुआ था। तब से निरन्तर परिमार्जित एवम् परिवर्धित होते हुये आज इसका दसवाँ संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसकी मुझे अत्यधिक खुशी है। आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये इसके पूर्व संस्करण में जिनेन्द्र पूजन विधि को भी संक्षेप में जोड़ा गया है। क्योंकि जिनेन्द्र दर्शन के साथ जिनेन्द्र पूजन की भी अचिंत्य महिमा हैं।

ये जिनेन्द्रं न पश्यंति, पूजयन्ति स्तुवंति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, तेषां धिक् च गृहाश्रमम्।।

(पद्मनंदी पं.विं.)
6—15/411

जो जिनेन्द्र दर्शन नहीं करते हैं और न ही जिनेन्द्र पूजा व स्तुति करते हैं, उनका जीवन निष्फल है। तथा उनका गृहस्थाश्रम में रहना भी धिक्कारणीय योग्य है।

गृहस्थों को जिनेन्द्र दर्शन व जिनेन्द्र पूजन आवश्यक ही नहीं अत्यावश्यक है। कहा भी है कि **''पहले देव पूजा फिर काम दूजा''** यह हमारी प्राचीन संस्कृति रही है कि श्रावक प्रथम जिनेन्द्र पूजा करता था फिर भोजन आदि अन्य काम करता था। बिना जिनेन्द्र पूजन के भोजन भी नहीं करता था। तभी वह सच्चा श्रावक माना जाता था और यह परम्परा प्रत्येक देशवासी श्रावकों में भी थी। वे अपनी–अपनी देशीय परम्परानुसार यथाशक्ति जिनेन्द्र पूजन किया करते थे। किसी को किसी से हस्तक्षेप नहीं था। सभी जिन पूजन को ही प्रयोजनीय मानते थे और सभी का एकमात्र वही लक्ष्य था। पंथ परम्परा मात्र माध्यम है, मुख्य नहीं। किन्तु वह आज प्रधान रूप लेती जा रही हैं और जिनेन्द्र पूजन गौण होती जा रही है। पूजक के भाव जिन पूजा में कम, पंथ परम्परा में विशेष हैं, उसे जिन पूजन का आनंद कम, अपनी पंथ पूर्ति का अधिक है, इसी में वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में तत्पर है। यही हमारी अज्ञानता हमें अपने आराध्य से वंचित कर देती है अतः हमें पूजन के सही उद्देश्य से लाभ हो और उसे अपने जीवन में उतारें, इसी भावना से हम अपने श्रम को सार्थक मानते हैं।

इत्यलं विस्तरेण।

ॐ नमः
गणाचार्य विरागसागर
4/2/9/2431

मेरी बात.......

यह अवसर्पिणी काल का ही स्पष्ट प्रभाव है कि आज पूजा और पुजारी दोनों ही शब्द समाज में समुचित आदर भाव के साथ स्मरण नहीं किये जाते। उनके प्रति उपहासात्मक दृष्टिकोण बन चुका है। भौतिकता के विकास से लोगों में धर्म के प्रति मानसिक संकीर्णता छायी हुई है। ऐसी स्थिति में पंच परावर्तन रूप संसार में भटकते हुए भव्य प्राणियों को जो कल्याण एवं समुन्नति का मार्ग है, सुख शांति का मार्ग है, उसके प्रति जागृत करने का दुरूह कार्य करने का साहस करें भी तो आखिर कौन.................?

समाज के बिगड़े माहौल में साहस के साथ आस्था के बीज बोने का सुदृढ़ संकल्प कोई धीर–वीर गंभीर तपस्वी साधक ही कर सकता है। इसके सिवाय अन्य लोगों के प्रयास तो झंझावत में उड़ते हुए तिनकों के समान सिद्ध होते हैं। यह परम सौभाग्य की बात है कि समाज में देव–शास्त्र एवं गुरूओं के प्रति आस्था का बीज अंकुरित एवं संवर्द्धित करने का महान कार्य परम पूज्य बाल ब्रह्मचारी प्रज्ञाश्रमण 108 आचार्य श्री विराग सागर जी महाराज ने जिस साहस एवं सक्रियता के साथ किया है उसकी मिसाल मिलना सचमुच में दुर्लभ है। आचार्य श्री जी ने अपने दीक्षा काल से ही हजारों लोगों में जैन व्रतों के संस्कार रोपण कर उन्हें सच्चा जैन बनाया तो समाज की नई पीढ़ी को भी उसकी आद्य सीढ़ी (जिन दर्शन–जिन पूजन) पर चलना सिखाया उसी का परिणाम है कि आज समाज में चहुं ओर नवयुवकों की चहल – पहल दिखायी दे रही है। अनेक युवकों का मन मोक्ष पथ की पगडंड़ियों को मापने के लिये मचल रहा है। भविष्य में विराग सागर में उठती हुई उत्तंग लहरें समाज के स्वरूप को पूर्ण रूप से बदल डालेंगी। इस बात में किसी संदेह की गुंजाइश नहीं रही है।

जैन समाज सदाचार एवं धर्म प्रभावना के मार्ग में सदैव अग्रणीय रहा है। हजारों वर्षों से उसकी संस्कृति परम्परा एवं इतिहास इस बात का साक्षी है कि जैन आचार एवं जैन धर्म विश्वशांति एवं आत्म कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग रहा है। तथा आगे भी युगों–युगों तक बना रहेगा।

इधर कुछ समय से पूजन एवं धर्म के नाम विवादास्पद परिस्थितियाँ बढ़ रही थी। समाज में धार्मिक जड़ता सी छा रही थी। लोग देवदर्शन एवं देव पूजन की विधि से बिलकुल अनभिज्ञ से होते जा रहे थे। कुछ अजीब सा वातावरण बनने लगा था। परंतु आचार्य श्रीजी की कृपा से वह सब जड़ता समाप्त हो गई। समाज जिन दर्शन एवं जिन पूजन की विधि से भली भांति परिचित हो सके उसका महत्व जान सके एतदर्थ आचार्य श्री जी ने इस विषय पर सांगोपांग विवेचन पूर्ण पुस्तक लिखकर महान कृपा की, जिसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा। इस पुस्तक के माध्यम से सभी बाल–वृद्धजन जिन दर्शन एवं जिन पूजन का महत्त्व जानकर आत्म कल्याण कर सकेंगे एवं अन्य साधारण जनों को भी यह उपयोगी सिद्ध होगी ऐसी आशा है। देव दर्शन पूजन के संबंध में यद्यपि पहले भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु ऐसी कृति पहले कभी देखने में नहीं आई। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से सुगमता एवं सरसता के साथ–साथ अल्प वयस्क बालकों की बौद्धिक क्षमता का भी बराबर ध्यान रखा गया है। आशा है विद्वानों के बीच भी इसका समादर होगा।

मकरसंक्राति 2005
श्रुत पंचमी वी.सं. 2576

गुरूचरण सेवक
धन्य कुमार राजेश

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1	जिनेन्द्र दर्शन I	8
2	जिनेन्द्र पूजन II	26
3	पूजन भेद (प्रकार) III	33
4	पूजन सामग्री IV	40
5	पूजन फल (39 उद्धरण) V	54
6	अभिषेक और पूजा	
	एक वैज्ञानिक छानबीन	59
7	उपसंहार	62
8	साहित्य लिस्ट	63

जिनेन्द्र दर्शन – I

मूल (जड़) बिना जिस प्रकार वृक्ष नहीं रह सकता है, नींव के बिना (जिस प्रकार) मकान सुदृढ़ नहीं रह सकता हैं, प्रथम सीढ़ी बिना जिस प्रकार शेष सीढ़ियाँ संभव नहीं है, उसी प्रकार.........जिनेन्द्र दर्शन........बिना श्रावक के अशेष व्रत नियम संभव नही हैं। गृहस्थ धर्म का प्रथम पाठ जिनेन्द्र देव दर्शन से ही प्रारम्भ होता है। इसके बिना गृहस्थ अधूरा है।

यह संस्कार एक ऐसा संस्कार है जो बचपन से ही प्रारम्भ होता है। इसके संस्कार कर्ता कोई दूसरे नहीं, अपितु अपने माता–पिता ही होते हैं, जिनके द्वारा दिया गया यह संस्कार जीवन पर्यंत रहता है।

शैशव या बचपनावस्था में बालक अबोध होता है। उस समय उसे मात्र लोभ या भय से और मृदुता या कटुता से इस ओर लाया जाता है। यद्यपि लोभ और भय से आवृत्त मृदुता या कटुता का भाव माता–पिता आदि के ऊपरी होता है, दिखावा होता है, अवास्तविक होता है किन्तु सत्य तो उसे धर्म की ओर प्रेरित करने का होता है।

यह एक ऐसा संस्कार है जो बालक को कलंकित नहीं, अपितु उज्ज्वल बनाता है। दुर्जन नही सज्जन बनाता है। पापात्मा नही धर्मात्मा बनाता है। दुखी नहीं सुखी बनाता है। उसे धर्म के निकट लाने का अर्थ है अनेक अच्छाइयों के निकट लाना। धर्मात्मा भले ही गरीब होगा किन्तु अंतःकरण से दुखी नहीं होगा क्योंकि अंतःकरण में धर्म है, जिसके अंतःकरण में धर्म होता है वह दुखी कैसे हो सकता है?

बाल्यावस्था वृक्ष की एक हरी एवं पतली वह डाल है जिसे किसी भी ओर मोड़ सकते हैं किन्तु मोटी एवं सूख जाने पर फिर उसका मुडना तो बहुत ही कठिन है अपितु वह झुक भी नहीं सकेगी और अधिक प्रयास किया गया तो या तो वह स्वयं टूट जायेगी अथवा झुकाने वाले को ही हताश कर तोड़ देगी।

लेकिन यह सत्य है कि इस समय दिये गये संस्कार चिरस्थायी होते हैं। इसी कारण से माता–पिता प्रथम उसे देव दर्शन

कराते हैं और कालान्तर में उसकी विधि उसे सिखाते हैं।

वे व्यक्ति मूर्ख हैं जो कहते हैं कि...यदि आप देव दर्शन की विधि नहीं जानते तो मंदिर क्यों आते हो.....? किन्तु इससे अधिक वे भी मूर्ख हैं जो देव दर्शन करने में तो अभ्यस्त है किन्तु देव दर्शन की विधि से अनभिज्ञ ही नहीं अपितु अनिच्छुक हैं।

यदि माता–पिता या अन्य किसी ने भी धर्म का यह प्रथम पाठ बालक को सिखाया है तो उसके इस असीम उपकार की छाप जीवन पर्यंत ही नहीं अपितु निर्वाण पर्यंत रहेगी। माता–पिता द्वारा दी गई... देव दर्शन विधि..... की शिक्षा तभी सार्थक होगी जब कि प्रथम वे स्वयं भी मंदिर जाते हों। अन्यथा नहीं। फिर या तो वे शिक्षा देंगे ही नहीं, अथवा देकर भी असफल रहेंगे।

यद्यपि प्राथमिक अवस्था में गलतियाँ बालकों से संभव हैं किन्तु उनका सुधार मात्र डांटने या मारने से संभव नहीं अपितु उस समय उसे क्षमा कर प्रेम से समझाने से ही होगा। भले ही दस बीस बार क्यों न समझाना पड़े।

बालकों में मात्र उम्र बालक ही नहीं अपितु धर्म बालक भी गृहीत है भले ही वे 70 और 80 वर्ष के क्यों न हो गये हो, भले ही वे नित्य पूजन और स्वाध्याय भी क्यों न करते हो। यदि देवदर्शन की विधि से वे अनभिज्ञ हैं तो वे भी यहाँ बालकों में गृहीत हैं।

दर्शन का अर्थ है देखना–जिसे हम देखना चाहते हैं। पदार्थ को देखने का प्रभाव हमारी आत्मा पर अवश्य पड़ता है, वह पदार्थ चाहे जैसा हो–सत्‌रूप हो अथवा असत् रूप सुरूप हो अथवा विद्रूप, धर्म रूप हो अथवा अधर्म रूप, जैसा भी हो, देखने से हमारे भावों में वह अपना अधिकार जमा लेता है अर्थात् जैसी वस्तु देखते हैं तदनुरूप हमारे भाव होने लगते हैं। आप अगर किसी पहलवान की जोश भरी फोटो देखें तो कैसे भाव होगें ? कि मैं भी इस जैसा हट्टा–कट्टा शरीर बनाऊँ और अगर किसी हीरो (एक्टर) की फोटो देखें तो कैसे भाव होगें ? ओहो! ऐसी फैशन, ऐसी ड्रेस, ऐसी एक्टिंग, ऐसा बालों का क्रम– मैं भी क्यों न

बनाऊँ! तथा जब कभी वीतरागता पूर्ण, करूणा से आर्द्र, शोभा से उदासीन किसी भगवान् या संत की फोटो या मूर्ति देखते हैं तब कैसे परिणाम होते हैं– धिक्कार है इस संसार को! मैंने विषय वासनाओं में सारा जीवन गवाँ दिया, तो भी कहीं क्षण भर भी शांति प्राप्त नहीं कर सका। अहा! धन्य है इस शांत मुद्रा को, मैं भी इस प्रकार से बनूँ। कैसे बनूँ–कब बनूँ ? आदि प्रश्न अन्तर आत्मा में झूलने लगते हैं। अतः देखना वही सार्थक तथा पूर्ण है जिसका प्रभाव हमारी आत्मा पर पड सके। अगर कुछ प्रभाव ही नहीं पड रहा है तो देखना अधूरा है।

यही कारण है कि दिगम्बर जैन परम्परा में प्रारम्भिक गृहस्थ को आद्य देव–दर्शन की प्रतिज्ञा दी जाती है। देव दर्शन का वास्तविक अर्थ हैं कि सच्चे देव को देखना–किन्तु कैसे देखना, इस लक्ष्य पर प्रायः प्राणी नहीं पहुँच पाते। अतः उस ध्येय तक पहुँचने का मार्ग–दर्शन देना ही इस कृति का मुख्य ध्येय है।

सर्वप्रथम हमको यह समझना होगा कि हम देव दर्शन क्यों करते हैं ? हम जैन हैं इसलिए देवदर्शन करते हैं, या हमारे गुरूजनों की आज्ञा है इसलिए हम देव दर्शन करते हैं अथवा हमारा दिन मंगलमय व्यतीत हो इसलिए देव दर्शन करते हैं, माता–पिता आदि नाराज होंगे, भोजन नहीं देंगे अथवा समाज के लोग क्या कहेंगे, इसलिए हम देव दर्शन करते हैं, इत्यादि। किन्तु यह पर्याप्त उत्तर नहीं है। देव दर्शन, इस विषय में कुछ तथ्य छिपा हुआ है। इसका बड़ा गूढ़ अर्थ है, अगर हम इसे समझ जायें तब हमारा देव दर्शन करना सार्थक है। वही सच्चा देव दर्शन और वही सफल दर्शन है। देव दर्शन कोई रूढ़ि–वाद नहीं है, अपितु इसमें बड़ी मनोवैज्ञानिकता है। आप भगवान की मूर्ति को देखें और बड़ी गहरी दृष्टि से देखें, कैसा उनका आकार है? क्या उससे सार पूर्ण शिक्षा मिल रही है, इत्यादि विचार करते करते आप अंततः उस चरम बिन्दु पर पहुँच जाइये कि मूर्ति के अंदर ही आप के मन में उन परम मूर्तिमान (वास्तविक भगवान) का आभाष होने लग जाये, फिर देखिये देवदर्शन का पुनीत आनन्द, फिर आपका मन वहां से हटने को नहीं होगा, क्षणों की क्रमिकता में आपकी हार्दिक विशुद्धता वर्द्धमानता की ओर गतिशील रहेगी, वही विशुद्धता पूर्ण चिंतन धीरे धीरे निजात्मा की ओर मुड़ने लगेगा। फिर आपको लगेगा कि वास्तव में देवदर्शन भी हमारे सुख एवं शांति में एक अपूर्व कारण है, उस समय के सुख का वेदन ही

वास्तविकता का परिचायक होगा। वही पूर्व बद्ध अशुभ कर्मों की निर्जरा एवं असाता रूप कर्मों के संवर का कारण है। सच्चे देव का दर्शन स्वयं को भी वैसा बनने का स्मरण दिलाता है। प्रत्येक प्राणी के अंदर सच्चे देव बनने की क्षमता है, किन्तु हम उसे अभी भूले हुए हैं। प्राणी अगर तद्रूप बनने का वास्तविक पुरूषार्थ करें तो स्वयं भी सच्चा देव बन सकता है। यह धर्म ग्रंथों की अकाट्य भविष्यवाणी है। अतः देवदर्शन से हमको उस रूप बनने का स्मरण होता है। देवदर्शन की कहीं भी प्रमाण या मर्यादा या सीमा नहीं दी है कि कितनी बार दर्शन करना चाहिए। जितनी बार हम दर्शन करेंगे उतना ही हमको लाभ होगा। अतः भव्य प्राणियों को नित्य देवदर्शन करना चाहियें।

प्रश्न उपस्थित होता है कि देवदर्शन कैसे करना चाहिए?

जब चिन्त्यों तब सहस्त्र फल, लक्खा फल गमणेश।

कोटा कोटि अनन्त फल, जब जिनवर दरशेय।।

देवदर्शन के पूर्व जब सर्वप्रथम दर्शन करने के भाव होते हैं, विचार बनते हैं उस समय मन को बड़ा निर्मल बनाना चाहिए। निर्मल बनाने की पाँच बातें हैं इन्हें ध्यान रखें–

1) विषय वासनाओं से उपयोग हटायें।
2) कषाय आवेग को समाप्त करें।
3) आपसी वैर भाव का त्याग करें।
4) मकान, दुकान, परिजन आदि की चिन्ता का त्याग करें।
5) आकुलता का त्याग करें।

मेरा अहो भाग्य है कि कितना शुभ समय का उदय हुआ जो भगवान के दर्शन के परिणाम हो रहे हैं, अतः अब मैं निश्चित ही देवदर्शन करूँगा, प्रभु की विनय के साथ भक्ति करूँगा सावधानी से उनके गुणगान में उपयोग लगाऊँगा, कितनी भी आपदा क्यों न आ जाये तो भी मैं अपने ध्येय से नहीं डिगूँगा इत्यादि। दर्शन के पूर्व की विचारधारा ही हजार उपवासों के बराबर फल को प्राप्त करा देती है। इसके उपरांत ध्येय पूर्ति की ओर सावधानता पूर्वक भक्त जब गमन (आगे बढ़ता है, चलता है) करता है, वह सही हृदय विशुद्धि उसके गमन में विशेषता लाती है कि कहीं हमारे द्वारा कोई प्राणी का वध न हो जाये, किसी को कष्ट न हो, मल मूत्र कफ आदि से कहीं हमारा पैर लिप्त न हो जाए, इत्यादि विचार करते हुये अर्थात् गुणगान करते हुए जो सावधानता पूर्वक मौन वृत्ति से गमन होता है उस समय की विशुद्धि

लाख उपवासों के फल के बराबर फलप्रदात्री कही गयी है।

श्री जिन मन्दिर, देव–दर्शनार्थ गमन के पूर्व निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि जिन मन्दिर भी नव देवताओं में एक देवता है। तो आईये! हम सीखे कि श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन कैसे करें–

1) चमड़े आदि की अपवित्र वस्तु साथ न ले जाएँ।
2) जूते–चप्पल आदि विकल्पोत्पादक वस्तु न ले जाना ही श्रेयस्कर है अन्यथा उपयोग उसी में ही रहेगा।
3) स्नानादि के उपरांत शुद्ध (धूले हुए) वस्त्र आदि पहनकर ही दर्शन करना विशुद्धता का द्योतक है।
4) खाली हाथ न जाएँ, यथाशक्ति कुछ न कुछ चढ़ाने के लिये वस्तु ले जाए।
5) झूठे मुख न जायें। इलायची, सुपारी, पान, फलादि खाते हुए न जाए, यदि वे वस्तुयें खायी हो तो मन्दिर प्रवेश के पूर्व स्वच्छ छने जल से कुल्ला कर लें।
6) जिन मन्दिर को दूर से देखते ही प्रसन्न हो जाना चाहिए और गद्गद् ध्वनि में.....आद्यष्टक स्त्रोत.....पढ़ना चाहिए। यदि याद न हो तो कम से कम एक या दो छंद अथवा निम्नांकित श्लोक पढ़ते हुए भक्ति भाव से नमस्कार करना चाहिए।

देवासुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः
पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः।
घंटा–ध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्योः।।
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः।। चै. भ. /6 ।।

जिन मन्दिर जिनेन्द्र प्रभु का आयतन है। यह पवित्र है, वंदनीय है, एवं पूज्य है, हमें इसकी भी आदर सहित वंदना करनी चाहिए।

7) मंदिर प्रवेश के पूर्व जूते, मोजे, चमड़े के बेल्ट, पर्स, घड़ी पट्टा, आदि उतार दें तथा पैर धोकर ही प्रवेश करें।

मन्दिर में प्रवेश करते हुए.....ओम जय–जय–जय की ध्वनि के साथ तीन बार घण्टे की मधुर नाद करें। घण्टा क्यों बजाना है ? क्योंकि घण्टा मंगल नाद का सूचक है। इस घण्टे की आवाज सुनकर सज्जनों को देवदर्शन के विस्मृत नियम का स्मरण होता है अथवा मरणासन्न प्राणी को धर्म की याद दिलाने हेतु, अथवा स्वयं के असद् विकल्प से छुटकारा प्राप्त करने हेतु घण्टा बजाना चाहिए। घण्टा इस प्रकार से बजाएँ ताकि किसी को धर्म–साधना में बाधा न हो।

तदनंतर निःसही–निःसही–निःसही, नमोऽस्तु–नमोऽस्तु–नमोऽस्तु का उच्चारण करते हुए आगे बढ़े।

अरिहंत भगवान् के मन्दिर में स्वर्ग के देव भी दर्शन, पूजन, भक्ति के लिए आते हैं। देव अदृश्य होते हैं। अतः यहाँ पर कोई देवी–देवता भगवान् की अर्चना कर रहे हों और उन्हें न देख सकने के कारण कहीं हमारे द्वारा उन्हें धक्का या पैर आदि न लग जाये, वो हमारे पर कुपित न हो, अथवा हमारे द्वारा उनकी साधना में कोई विराधना न हो जाए, इस हेतु उन्हें प्रथम ही सावधान करते हुये ही निःसही–3 का प्रयोग किया जाता हैं। इसका अर्थ है कि यहाँ पर उपस्थित अगर कोई देव हो तो हमारे लिए स्थान दें, मैं भी दर्शनार्थ आया हूँ।

हे वीतराग देव! हे सिद्धांत शास्त्र!! हे निर्ग्रंन्थ गुरू!!! मैं आप सभी को नमस्कार करता हूँ।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं।।
ऐसा पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं।।
चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं
सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं
केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा,
सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

आदि बोलते हुए वेदी के समक्ष पहुँच जाएँ। वेदी के समक्ष पहुँचते ही हाथ जोड़कर कोई प्रार्थना, दर्शन पाठ या स्त्रोत आदि पाठ बोलते हुए सर्वप्रथम तीन प्रदक्षिणा लगायें। किन्तु ध्यान रखें

अगर कोई दर्शनार्थी भगवान को धोक दे रहा हो तो उसके आगे से कदापि न निकलें या तो जब तक वह धोक से उठ न जाये तब तक आप खड़े रहें या उसके पीछे से निकल जाए। वेदी की दायीं तरफ से बायीं दिशा की ओर प्रदक्षिणा तीन ही लगाने का मुख्य प्रयोजन यह है कि तीन प्रकार की शुद्धि (मन, वचन, काय) से युक्त होकर के अथवा ये प्राणी तीन प्रकार के महान रोगों (जन्म, मरण और बुढ़ापा) से अति दुःखी है, अतः इन रोगों की सदा–सदा के लिये परिसमाप्ति हो, इसलिए तीन प्रदक्षिणा लगानी चाहिए।

इसके पश्चात् वेदी के पास खड़े होकर भगवान् को अपलक निहारते हुए अथवा आँखों को बन्द करके भगवान् की स्तुति पढ़े।

(दर्शन पाठ)

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी।। 1 ।।
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकारजी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रमगिन्यो हितकारजी।। 2 ।।
भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हर्यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ।। 3।।
धन घड़ी यो धन दिवस यों हीं धन्य जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरा उदय आयो, दरस प्रभु जी को लखि लयो।। 4।।

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं।
वसु प्रातीहार्य अनन्त गुण युत, कोटि रवि छबि को हरैं।। 5 ।।
मिट गयो तिमिर-मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष एसो भयो, मनु रंकचिन्ता मणिलयो ।। 6 ।।
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तव चरणजी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक पति जिन, सुनहुँ तारण तरण जी।। 7।।
जाचूँ नहीं सुर-वास पुनि नर राज परिजन साथजी।
''बुध'' जाचहूँ तव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथजी।। 8।।

तद्नंतर भगवान के समक्ष खड़े होकर निम्नांकित श्लोक तथा मंत्र बोलते हुए उचित स्थान पर लायी हुई पुंज सामग्री को पाँच ढेली से चढ़ाये।

उदक चन्दन तंदुल पुष्पकैः
चरूसुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गानरवाकुले
जिनगृहे जिननाथमहं यजे।।

ऊँ हीं श्री अरिहंत-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व साधुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ निर्वपामिति स्वाहा।

इस प्रकार पाँच ढेली रूप पुंज चढ़ाने का हेतु पंच परमेष्ठी ही हैं, परमेष्ठी पाँच होते है (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु) अतः प्रत्येक के उद्देश्य से पृथक्-2 पांच ढेली से चढ़ाना चाहिए। तंदतर अपने हाथों को मुकुलित (हाथ जोडें) कर मस्तिष्क से लगाते हुए नमस्कार करें।

ध्यान रखें, नमस्कार झुककर के ही किया जाता है। अतः पुरूष वर्ग कोई भी आसन (पंचांग, साष्टांग, गवासन आदि) से नमस्कार कर सकते हैं, किन्तु महिलाओं को मात्र गवासन पूर्वक ही नमस्कार करना चाहिए।

नमस्कार करते समय उच्चारण करें-

1) **तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पद द्वये लीनम्।**
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्, यावन्निर्वाणसंम्प्राप्तिः।। स. भ./7।।

2) **एकाऽपि समर्थेयं, जिनभक्ति दुर्गतिं निवारयितुम्।**
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।। स. भ./8।।

3) **याचेऽहं याचेऽहं, जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।**
याचेऽहं याचेऽहं! पुनरपि तामेव तामेव।। स. भ./18।।

इसके बाद गंधोदक लेना चाहिए।

गंध= सुगंधित, उदक = जल, अर्थात् भगवान के अभिषेक का पवित्र न्हवन जल है। इसे बडी श्रद्धा और भक्ति के साथ सीधे (दाहिने) हाथ से लेना चाहिए। यदि हाथ अशुद्ध है तो उन्हें पहिले धो ले, तदनंतर विनय पूर्वक दोनों हाथों से गंधोदक लें। और इसे अपने उत्तमांगों में लगायें। क्योंकि ये जिनेन्द्र भगवान् के परम पवित्र देह से स्पर्शित हुआ है। जिनेन्द्र भगवान् का शरीर तो पवित्र होता ही है किन्तु उनके पवित्र शरीर से श्लिष्ट अनेक रजकण भी पवित्र हो जाते है। इतना ही नहीं उनसे संबंधित भूमि या जल आदि पूज्यपने को प्राप्त हो जाती है उनसे स्पर्शित भूमि, जल आदि में वह अतिशय आ जाता है। जो बड़े-बड़े मन्त्रों-तन्त्रों से नही आता। तथा मूर्ति वही पूज्य होती है जो विधि विधान के अनुसार प्रतिष्ठित हो। ऐसी मूर्तियों का गंधोदक पाप विनाशक एवं धर्म प्रकाशक है, इसमें बड़े-बड़े रोगों, ग्रहों को शान्त करने की क्षमता है। गंधोदक से आत्मशुद्धि होती है, मन प्रसन्न रहता है, तथा अशांति की समाप्ति होती है अतः गन्धोदक को लेते समय निम्नांकित श्लोक पढ़ें।

''मुक्ति श्री वनिता करोदमिदं, पुण्यांकरोत्पादकम्,
नागेन्द्र त्रिदशेन्द्र चक्र पदवी राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञान चरित्र दर्शन लता संवृद्धि सम्पादकम्,
कीर्ति श्री जय साधकं तव जिन! स्नानस्य-गन्धोदकम्।।

अथवा

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पाप नाशक।
जिन गंधोदकं वंदे, कर्माष्टकं विनाशनं।।

इसके बाद सामने से हटकर मूर्ति के कुछ बाजू (बगल) में स्थित होकर या दीवार के पास खड़े हो स्तुति आदि करना चाहिए ताकि अन्य दर्शनार्थियों को कोई बाधा न आये, भगवान् की मूर्ति को एक टक से निहारें (देखे) तथा देखते ही रहें। कैसी प्रशांत मुद्रा है, जिस प्रभु की यह मूर्ति है अर्थात् जिनकी इसमें स्थापना हैं, निश्चय से उनकी वास्तविक अवस्था क्या थी ? कैसी थी ? इत्यादि बातों का बार बार चिंतवन करते हुए, मूर्ति के अंदर उस वास्तविक रूप को देखें तथा विचार करें कि ये

1. **मूर्ति वस्त्र आभूषण सहित क्यों नहीं है ?**

मैंने मूर्तियाँ बहुत देखी किन्तु प्रायः सभी बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सजी ही देखी, इन जैसी मूर्ति आज तक नहीं देखी। यह इस प्रकार क्यों? इसका समाधान अपनी आत्मा से करें, उत्तर मिलेगा– हाँ! ये बारम्बार सभी को कह रही हैं कि शरीर की शोभा से आत्मा की शोभा नहीं हो सकती, शरीर को जीवन भर भी क्यों न सजाओं, तो भी ये अपने अपवित्र स्वभाव को नहीं छोड़ सकता एवं अन्त में विनाश को प्राप्त होगा। शरीर–श्रृंगार से राग बढ़ता है, राग से मोह, मोह से कर्म तथा कर्म से संसार चक्र गतिमान रहता है, जिससे भगवान और भक्त में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाता, अतः ये मूर्ति कह रही है कि हे भव्यों! देह की शोभा छोड़ो, क्योंकि शरीर को यदि जीवन भर भी सजाया जाए तो भी पूर्णतः नहीं सज सकता। क्योंकि जीवन का समय स्वल्प है और श्रृंगार सामग्री अधिक।

पर पदार्थों की सुन्दरता से अपने कुरूप को छिपाना क्या यह मायाचार नहीं है ?

दूसरी बात यह है कि यदि हीन मूल्य के वस्त्राभूषण ही क्यों न हो तो भी वे राग, द्वेष, कषाय, वासना, याचना, परिग्रह, मोह, रक्षा आदि विकल्पोत्पादक ही हैं, यथार्थ धर्म साधना में बाधक हैं तथा दूसरों का इससे अपकार होता है। इसलिए करूणा बुद्धि से उन्होंने उसे ग्रहण ही नहीं किया। क्योंकि उक्त सामग्री आत्म–निर्बलता का एवं वासनाओं को ढ़कने की सामग्री है। अतः समस्त वस्त्राभूषणों से रहित, अपने प्राकृतिक रूप में ही धर्म साधना संभव है, इसी में मोक्षगमन की अंतिम तैयारी होगी, इत्यादि महान शिक्षा यह जिनेन्द्र मूर्ति देती है।

2) मूर्ति हँसती हुई अवस्था में क्यों नहीं है ?

नहीं! क्योंकि ये वीतराग देव की मूर्ति हैं, हँसती हुई मूर्ति राग का सूचक है, बिना राग के कभी हँसी नहीं आ सकती है। तथा खेद खिन्नता से भी रहित है, क्योंकि खिन्नता संक्लेशता का सूचक है। बिना संक्लेशता के खिन्नता नहीं आ सकती। राग–द्वेष आदि से रहित होने के कारण हँसती हुई एवं खेद खिन्न नहीं है–ये दोनों में समानता रखने की शिक्षा देनेवाली वीतराग प्रभु की समतामयी मूर्ति है।

3) नागाग्र दृष्टि क्यों ?

आप अपनी आत्मा से पूँछे कि भगवान की नासाग्र दृष्टि क्यों हैं

? उत्तर मिलेगा कि इन्हें अब कुछ देखना शेष नहीं रहा, जो कुछ देखना था उसे देख लिया। दूसरी बात यह है कि इनके अंदर क्रोध का अभाव है। जब हमें क्रोध आता है तो हमारी आँखों ऊपर चढ़ जाती हैं, भौहें खिंच जाती हैं, आँखें लाल पीली हो जाती हैं। किन्तु भगवान की नासाग्र दृष्टि हमें उपदेश दे रही है कि बाहर की ओर मत देखो अपनी ओर देखो, अपनी ओर देखने से क्रोध नही आता क्योंकि उस समय हम स्वयं की गलती खोजने में लग जाते हैं। स्वयं की ओर देखने से आत्म–शोधन होता है, पाप भावनाओं का परिमार्जन होता है, क्रोध का उपशम होता है। क्रोध तभी आता है जब हम दूसरों की ओर देखते हैं, उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार चलाना चाहते हैं। अतः नासाग्रदृष्टि यह महान शिक्षा देती है कि स्वयं की ओर देखो, इसी से कल्याण संभव है।

4) हाथ पर हाथ क्यों ?

अरे! ये अपने हाथ पर हाथ क्यों रखें ? ये हमें आशीर्वाद क्यों नही देते? ऐसा क्यो? इसका भी बड़ा रहस्य होगा– हाँ, अब समझ में आया– एक दिन हमारे दादा जी कह रहे थे कि हमारे घर का सब कार्य बच्चे सम्हालते हैं। हमें कुछ नहीं करना पड़ता हैं, मैं तो हाथ पर हाथ धरें बैठा हूँ, यही शिक्षा यहाँ से मिलती हैं– मूर्ति कह रही है कि अब मुझे कुछ करना शेष नहीं रहा जो कुछ करना था सो सब कर लिया, अब कृतकृत्य हो चुका। दूसरी बात का उत्तर यह है कि अब इन्हें किसी से न तो राग है, न द्वेष, न किसी को आशीर्वाद देने की आवश्यकता है और न शाप देने की, क्योंकि दोनों के लिए ही हाथ ऊपर उठाया जाता है। अतः ये समता स्वभाव में लीनता की ही परम शिक्षा दे रही है।

5) श्रीवत्स का चिह्न क्यों ?

अभी तक हम समझते थे कि ये मध्य छाती में चिह्न शोभा के लिए यों ही कारीगरों ने बनाया होगा या रोमावली होगी ? किन्तु महाराज जी ने बताया हैं कि वीतराग भगवान की मूर्ति सभी प्रकार की शोभा, श्रृंगार से रहित होती है, यदि मूर्ति में कुछ भी शोभा के लिए किया जाए तो फिर उसमें वीतरागता कहाँ ? अतः यह निशान शोभा के लिए नहीं बना। फिर रोमावली होना चाहिए ? नहीं! ये रोमावली भी नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर आदि महापुरूष महान पुण्यात्मा जीव होते हैं, महापुरूषों के मात्र शिर पर ही बाल होते हैं अन्य स्थानों में नहीं। तो फिर ये क्यों हैं ? ये शरीर के एक हजार आठ शुभ लक्षणों में से एक शुभ लक्षण है इसे श्रीवत्स कहते हैं, यह महान पुण्योदय से ही होता है। यह चार पंखुड़ी रूप क्यों बना ? यह

अनन्त चतुष्टय (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य) का सूचक है। कहीं–कहीं आठ पंखुड़ी का भी दिखने में आता है। वह अष्टदल कमलवत् द्रव्यमन का सूचक है। अथवा अष्ट कर्मों के नष्ट होने से जो आठ गुण प्रकट होते है, उनका सूचक है।

6) पैर पर पैर क्यों ?

इसका भी बड़ा रहस्य है। यह मुद्रा सूचना दे रही है कि अब मुझे संसार में कही भी भ्रमण नहीं करना, सभी स्थानों में परिभ्रमण कर लिया। वह भी खूब किया है, एक बार नहीं, दो बार नहीं अपितु अनन्त बार भ्रमण कर लिया, और अच्छी तरह से परमाणु–परमाणु तक में देख लिया। कहीं भी किंचित् भी सुख नही है, सुख का स्त्रोत अपने अन्दर ही है, भ्रमण में क्लेश ही है। शांति नहीं, यही पैर पर अर्थात् पद्मासन की मुख्य शिक्षा है।

7) चिह्न क्यों ?

प्रतिमाओं में भिन्न–भिन्न चिह्न क्यों है ? चिह्नों की क्या आवश्यकता हैं ? अरे स्मरण आया, कल ही तो महाराज जी ने कहा था कि यदि मूर्ति में चिह्न नहीं हो तो कैसे समझ सकते हैं कि ये आदिनाथ भगवान् हैं या महावीर भगवान्? चिह्न हमें पृथक्–पृथक् तीर्थंकरों की सूचना देते हैं। उनकी पहचान बताते हैं। चिह्न कौन रखता है ? चिह्न को कोई रखता नहीं है अपितु जब तीर्थकरों का जन्म होता है तभी से उनके शरीर में एक हजार आठ शुभ लक्षण होते हैं उनमें से यह भी एक लक्षण है। जब सौधर्मेन्द्र बालक तीर्थंकर का पांडुक शिला पर अभिषेक करता है तब उस बालक के दायें पैर के अंगूठे में चिह्न देखता है, इसी के आधार से प्रतिमाओं में चिह्न रखे जाते हैं। इन चिह्नों को देखकर हम सभी को उन–उन तीर्थकरों की विशेष भक्ति करनी चाहिए।

8) इनके हाथ में अस्त्र–शस्त्र क्यों नहीं हैं ?

अस्त्र–शस्त्र विद्वेषता के सूचक है। कषाय के स्थान तथा भय के प्रतिरूप है। क्योंकि किसी से विद्वेषता होगी अथवा होना संभव होगी तथा प्रतिविरोध के लिए इन्हें रखा जा सकता है, अन्यथा नहीं। दूसरी बात यह है कि अस्त्र – शस्त्र, भय और निर्बलता के सूचक है। जिन्हें चोर शत्रु या हिंसक प्राणियों से भय है अथवा आत्मबल की जिन्हें जानकारी नहीं है, अशरण एवं अस्थिरता के ज्ञान से जो शून्य है, वे ही अस्त्र–शस्त्र रख सकते हैं। ये मूर्ति सभी को कह रही है कि, कितने भी

बड़े या अधिक हथियार (अस्त्र–शस्त्र) भी क्यों न रख लो, तो भी ये मरण से नहीं बचा सकते। जब तक ये हाथ में रहेंगे तब तक ये बल, मद आदि हिंसा भावों को ही उत्पन्न करते रहेगे तथा अनेकानेक बलहीन प्राणियों को भय उत्पन्न करते रहेंगे, तब तक तुम्हें कायर बनाये रखेंगे अतः ये उक्त दोषों से रहित है। इसलिए इनके हाथ में अस्त्र शस्त्र नही हैं। इनके गले में माला व हाथ में कमल आदि नहीं हैं क्योंकि ये सम्पूर्ण इन्द्रिय विषयों से रहित है। जो पंचेन्द्रियों के विषयों पर पूर्ण विजेता होते हैं उन्हें फिर उक्त विषयोत्पादक सामग्री की आवश्यकता नहीं होती इत्यादि विचार के बाद कोई स्तुति प्रार्थना या पाठ आदि बोलना चाहिए तभी आपका देवदर्शन करना सफल व सार्थक हो सकता है। उस समय के आनन्द का मापदण्ड परिणामों की विशुद्धता तथा एकाग्रता है। जितने आपके परिणाम विशुद्ध होंगे, आनन्द भी उतना ही अधिक होगा। यह विशुद्धता ही कोटि–कोटि अनन्त उपवासों के बराबर फल देने वाली है। देव–दर्शन के उपरांत जिनवाणी के समक्ष पहुँचना चाहिए तथा वहाँ भी निम्नांकित श्लोक व मन्त्र बोलते हुए चार ढ़ेली से पुंज चढ़ाये।

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैः
चरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले,
जिनगृहे श्रुत राजमहं यजे।।

ओम् ह्रीं श्री चतुरानुयोग रूप अर्हत् मुखोद्भव श्रुताय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

9) अर्घ निश्चित स्थान पर हीं चढ़ाये

चार ढ़ेली से पुंज चढ़ाने का तात्पर्य यह है कि समस्त द्वादशांग रूप जिनवाणी चार अनुयोगों में विभक्त हैं। अतः उन चारों अनुयोगों की प्रधानता से ही यहां अर्घ चढ़ाना चाहिए। इसके उपरान्त नमस्कार कर स्वाध्याय करें। तदनंतर उपस्थित मुनिराज आदि गुरूओं के पास पहुँचे। वहाँ भी निम्नांकित श्लोक व मंत्र बोलते हुए तीन ढ़ेली से पुंज चढ़ावें।

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैः चरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गान रवाकुलेः जिनगृहे गुरूराजमहंयजे।।

ओम् ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामिती स्वाहा।

गुरूओं के समक्ष तीन ढ़ेली से पुंज चढ़ाने का तात्पर्य यह है कि

स्तुति आदि में भी यही मुद्रा रखें। मस्तिष्क का अग्रभाग जमीन से स्पर्शित करें। आप सोच रहे होगें कि मूर्ति के दर्शन से यह संभव कैसे है, उससे क्या निकलता होगा ? लेकिन ध्यान रहें कि उसमें भी मंत्रों का आरोपण किया गया है और वह शक्ति जगायी गयी जो कि साक्षात् मूर्तिमान् में होती है।

जिनेन्द्र मूर्ति, जिनवाणी, निर्ग्रंथ गुरू जिनके कि हम नित्य दर्शन करते हैं, वे एक स्वच्छ एवं निर्मल दर्पणवत् हैं। दर्पण को देखने का अर्थ अपने आप को देखना है। अपनी सूरत और उसकी खराबी देखना है। जो हमें उपहास का पात्र बनाती है और उसे मात्र देखना ही नहीं है अपितु उसे अविलंब साफ भी करना है और वह कार्य दूसरों के देखने और कहने के पूर्व ही शीघ्र करना है। उसे देखने का यही प्रयोजन है।

दर्पण और मूर्ति में मात्र इतना ही अंतर है कि दर्पण में शरीर दिखता है किन्तु मूर्ति में हमारी अन्तरात्मा दिखती है। और फिर दिखती है उसकी खराबियाँ, बुराईयाँ, काले धब्बे, अपनी वर्तमान की करतूतें और फिर दिखता है अपना भविष्य, लेकिन यह सभी को संभव नहीं, उसे ही दिखेगा जिसकी आँखे होगी। जिसकी आँखे ही नहीं होगी उसे क्या दिखेगा दर्पण में ? उसका तो दर्पण लेना ही व्यर्थ होगा साथ ही उपहास होगा, उसको सभी लोग मूर्ख, पागल या मदहोश कहेंगे, आप भी उसे देखकर हंस उठेंगे, खिलखिला उठेंगे और दूसरों को भी उसकी ओर संकेत कर हंसायेगे। लेकिन यह कब तक, तभी तक न, जब तक वह सूरदास यह न कहे कि मुझपर नहीं और मेरे अंधेपन पर भी नहीं अपितु आप अपने पर, अपने अंधेपन पर हंसिये। मैं अंधा हूँ यह तुम्हें दिख रहा है किन्तु जो आप देख रहे है वह गलत है, अंधा मैं नही हूँ मुझे तो दिख रहा है और मैं देख रहा हूँ, दर्पण मात्र दिखावा है। दर्पण तो मात्र तुम जैसे अंधों के लिये ही लिये है जिन्होनें अनेक बार देखा उसमें अपने आप को, फिर भी देख नहीं सके। वे एक बार अपने आपको भी देखें, मैं देख रहा हूँ। आपको आश्चर्य जरूर होगा कि ये अंधा क्या देखेगा, किंतु मात्र मैं चर्म नेत्रों से ही अंधा हूँ, दुनिया ने अभी तक इतना ही मुझे समझा हैं और जाना हैं, और इसी रूप से ही देखा हैं। ठीक ही है, अधिक जानेगी भी कैसे ? क्योंकि ज्ञान नेत्र शायद उसके नहीं होगे। किन्तु वे नेत्र मेरे पास है उनसे अहर्निश देखता ही रहता हूँ। अब आप ही कहें अंधा कौन ? मैं या वे ? मैं या आप ? आप मूर्ति के दर्शन करते है और मैं जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन करता हूँ। आप कागज और अक्षर में दर्शन करते है। किन्तु मैं उसे

जीवन में उतारकर दर्शन करता हूँ। आप पूज्य मुनिराजों के मात्र शरीर के दर्शन करते हैं किन्तु मैं उनकी श्रद्धा और भक्ति के साथ उनके गुण का दर्शन करता हूँ।

- आपके देव–शास्त्र–गुरू मात्र मन्दिर में रहते हैं किन्तु वे मेरे पास हरदम रहते है।
- आप उनकी दर्शन पूजन भक्ति कुछ समय तक करते हैं किन्तु मैं अहर्निश करता हूँ।
- आप उनकी सेवा संगति कभी कदाचित् ही करते होंगे किन्तु मैं सदा करता हूँ।
- आप उनमें संतुष्ट हो जाते हों किन्तु मैं संतुष्ट नहीं हो पाता हूँ।
- आप सब कुछ करके भी भूल जाते हों किन्तु मैं भूलने की सोचता भी नहीं हूँ।

भैया, मेरी बातें तुम्हें कष्टप्रद जरूर लगी होगी किन्तु क्षमा करें। यह एक देखने की कला है। हम इस तरह से दर्शन करें कि जिससे वे मूर्ति के अन्दर ही मूर्तिमान रूप में साक्षात् अवतरित हो जायें, हम उनके वास्तविक दर्शन कर सकें। सत्य दर्शन कर सकें, हमें फिर मूर्ति दिखे ही नहीं, एक मात्र मूर्तिमान ही दिखे, और वह सदा दिखता रहें, लेकिन यह तभी संभव है जबकि हमारे नेत्र होंगे। चर्म के नहीं, ज्ञान के। तभी हम इन नेत्रों के माध्यम से उनके सत्य दर्शन कर सकेंगे, और तभी हमारा देव दर्शन करना सार्थक होगा, तभी हमारी सारी देवदर्शन की महिमा साकार हो सकेगी, फिर हम उन्हें देख प्रसन्न भी होंगे, निश्चित ही दिखेगा दोनों में समानता नहीं बहुत बड़ा अंतर दिखेगा। अन्तर ही तो देखना था जिससे कि समानता पा सकें। अंतर देखने से ही समानता की ओर कदम बढ़ेगें और बढ़ते–बढ़ते वे समानता को पा सकेंगे। और यदि अंतर नहीं दिखा, समान होने के पहले से ही समानता दिखी तो फिर ध्यान रखना, आप जैसे हैं वर्तमान में वैसे ही रह जायेगे, वचनों में और विचारों में भले ही समानता बनी रहें लेकिन इतने मात्र से तुम कभी भी तुम समान नहीं हो पाओगे। और फिर आपका देखना भी सार्थक नहीं होगा और न वह जिनेन्द्र दर्पण। क्यों ? क्योंकि आप जैसे थे आपको उसमें वैसा नहीं दिखा है और जो दिखा है वह एक अधूरा सपना दिखा है लेकिन हमें सपने को नहीं अपने आप को देखना है। जब हम उन्हें देखते है और अपने को देखते हैं तब कितना बड़ा अंतर दिखता है कि एक वे

भी जीव हैं जिनके वंदन के लिए दुनिया तरस रहीं है और एक मैं हूँ। दोनों में इतना अंतर कि एक पूज्य हो गये और एक पुजारी रहा आया। पूज्य को देख यद्यपि गर्व है, आनन्द है किन्तु हम पुजारी को देख दुखी है। खेद है कि हम आज तक उन जैसा नहीं बन पाये, आखिर क्यों ? फिर दिखती है अपनी करनी की सारी फिल्म। और फिर पश्चाताप के, अज्ञान के, मोह के अविरल अश्रु बहते हैं। यहीं से देव दर्शन की गरिमा बढ़ती है।

देवदर्शन से क्या लाभ ? इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर मिलता है। और फिर बढ़ते है हमारे देव दर्शन के प्रति कदम। फिर किसी का आग्रह नहीं होता और न किसी की प्रतिक्षा, मात्र अपनी ही इच्छा होती है। इसे फिर कोई रोक नहीं सकता और न फिर वह किसी से रूकता हैं, विश्व की सारी शक्तियाँ तब हार मानकर किनारें हो जाती है। जब वह कहता है कि नहीं, मैं खाना भी तभी खाऊंगा और पानी–दूध–चाय भी तभी पीयूँगा जब जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन कर लौट आऊँगा। उसे जिनेन्द्र दर्शन के बिना सब निर्मूल्य, अधूरा और फीका लगता है। लेकिन यह सब उसे ही, जिसकी दृष्टि हैं, आँख हैं, सम्यक ज्ञान की। तभी वह एक बार के ही दर्शन से आनंदित होता है, हर्षित होता है, गद्‌गद् होता है, अपने जीवन को दिन और घड़ी को सराहता है और उन जैसा बनने का संकल्प करता है। साथ ही उपाय खोज सशक्त कदम बढ़ाने का साहस करता है। यही है देवदर्शन की गरिमा और महिमा। धर्म की प्रथम सीढ़ी, नीव का प्रथम पत्थर, वृक्ष का मूल "तो आइये देव दर्शन करने की विधि से हम आगे कदम बढ़ाएँ।"

जिनेन्द्र पूजन II

पूज्य से मिलने का और उन्हें पाने का, उनसे साक्षात् करने का एक सुगम उपाय पूजा करना हैं।

माहात्म्य :– पूजा एक वह अमोघ मंत्र है जिससे कि पूजक अपने पूज्य से साक्षात्कार करता है। परस्पर में उन से वार्ता करता है और बड़ी श्रद्धा भक्ति से वह उन्हें अपने हृदय रूपी कमलासन पर स्थापित करता हैं।

पूजा, पूज्य और पूजक की दूरी और अंतर को समाप्त कर देती है। पूजा में एक ऐसी अमोघ शक्ति होती है जिसके द्वारा पूजक भी पूज्य या भक्त भी भगवान बन जाता है।

पूज्य को यदि एक भी बार हृदय से पहचान लिया जाये तो निश्चित ही उनके समक्ष विश्व की समस्त विभूतियाँ भी निस्सार प्रतिभासित होने लगेगी। फिर आप भी पूजा के बिना एक दिन तो क्या अपितु एक क्षण भी नहीं गवाँयेगें। यही तो पूजा की साक्षात् महिमा है एवं प्रत्यक्ष उसका स्वाद है।

पूजा श्रावक धर्म की आद्य सीढ़ी है जिसके बिना शेष सीढ़ियों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यदि आप कुछ समझते हैं और समझना चाहते हैं तो आइये, पवित्रता से हम उस पूजा विषयक विशुद्धि की ओर कदम बढ़ाएँ।

सर्वप्रथम हम 'पूज्य', 'पूजक', 'पूजा' और 'पूजा के फल' को देखेगे। क्योंकि इन चारों ही बातों को जानना आवश्यक ही नहीं अपितु नितांत आवश्यक है। इन्हें जाने बिना, पूजा हो नहीं सकती। अतः हम प्रथमतः इसे ही समझ लें।

पूज्य– प्रश्न हो सकता है कि 'पूज्य कौन ? क्योंकि पूज्य को जाने बिना पूजन अधूरी ही नहीं अपितु प्रारम्भ भी नहीं होती। अतः पूज्य को जानना भी आवश्यक है। 'पूज्य' वही हो सकता है जिसने या तो रत्नत्रय आदि आत्मिक गुणों को पूर्णतः प्राप्त कर लिया है अथवा पूर्णतः प्राप्ति की साधना में संलग्न है। वे है– अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि।

दूसरी वह वस्तु भी पूज्य होती है जो जिनेन्द्र प्रभु से साक्षात् सम्बंध रखती है। जैसे : जिनवाणी, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय, जिनधर्म, निर्वाण क्षेत्र, निषधिका स्थान आदि। कहा भी गया है–

अरिहन्त–सिद्ध–साहू–तिदयं जिणधम्म वयण–पडिमाहू।
जिण–णिलया इदिराए णव देवा दितुं में बोहिं।।

अर्थात् अरहत , सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनप्रतिमा और जिनालय– ये हमारे लिए पूज्य है। यें सब नव–देवता मुझे बोधि प्रदान करें।

पूजक– दूसरा प्रश्न होता है कि पूजक (पूजा करने वाला/पुजारी) कैसा होना चाहिए ? क्योंकि इसके जानें बिना भी सहसा कदम बढ़ाए नहीं जा सकते हैं एवं बढ़ाना भी उचित नहीं है। क्योंकि कभी–कभी लाभ के स्थान पर हानि भी संभव है। अतः पूजक की योग्यता को जान लेना भी आवश्यक है।

पूजक या पुजारी को सर्वप्रथम पूज्य और पूजा के फलों के प्रति श्रद्धावान्, विश्वासी होना चाहिए क्योंकि **श्रद्धा हीं भक्ति की जननी है।** बिना श्रद्धा के भक्ति हो नही सकती। यदि हो भी रही है तो वह असत्य ही है। अतः पूजक को श्रद्धावान्, विवेकी, निरालसी, मद्य–मांस–मधु त्यागी, पंच उदम्बर फलों (बड़ पीपर, ऊमर, कठूमर, अंजीर) का त्यागी, सप्त व्यसनों (जुआ, मांस, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन) का त्यागी, रात्रि भोजन– धूम्र पान–अनछने जल का त्यागी होना चाहिए।

मिरगी, कुष्ठ (कोढ़), क्षय (तपेदिक), दमा, अपानवायु (गैस) आदि भी रोग नहीं होना चाहिए। अतिबाल (8 वर्ष से कम), अति वृद्ध, पागल, चपल, अतिमंद बुद्धि भी नहीं होना चाहिए। धोती, दुपट्टा एवं यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारी होना चाहिए। संभव हो तो पूजा का द्रव्य यथाशक्य स्वयं का ही होना चाहिए। साथ ही निम्नलिखितानुसार पूजन के कार्य में दक्ष (पटु/कुशल) होना चाहिए। (सूतक – पातक का अशौच नहीं होना चाहिए)

पूजा– पूज् धातु में अविकरण लगा और टाप् प्रत्यय लगने से पूजा शब्द बना (पुज्+अ+टाप्)। पूजा के अनेक अर्थ हैं जैसे – आदर, सम्मान, विनय आदि भी है। (श्री गुणभद्राचार्य ने महापुराणमें)–

यागो्, यज्ञः, क्रतुः, पूजा सपर्येज्याध्वरो मखः।
मह इत्यादि पर्याय वचनान्यर्चना विधेः।।193; म.पु. 67।।

अर्थात् याग, यज्ञ, ऋतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख और मह – ये सब पूजा विधि के पर्यायवाची नाम हैं।

यद्यपि पूजा दो भागों में बंटी है–

(क) लौकिक पूजा (ख) लोकोत्तर पूजा।

लौकिक आदर सम्मान लौकिक जनों में लोक–व्यवहार के लिए होता है, जो कि शिष्टाचार, विनयाचार आदि का सूचक है।

दूसरा लोकोत्तर या परमार्थिक आदर सम्मानः यह लोकोत्तर पुरूषों में अर्थात् जिनकी समानता जब सामान्यों में नहीं होती ऐसे रत्नत्रयधारी या साधकों या उसमें सफल हुए पुरूषों में होता है। इसी (पूजा) को हम यहाँ 'पूजन' शब्द कहेंगें।

पूजन शब्द का दूसरा अर्थ होता है 'अपने आराध्य के प्रति समर्पित हो जाना; उन्हें अपने सिर से भी उच्च मानना और स्वयं को उनके चरणों की धूल से भी नीचे। यहीं से पूजन प्रारम्भ होती है।

भक्त के लिए भगवान प्राण से भी मूल्यावान होते हैं। यही कारण है कि वह भक्ति में अपने प्राणों तक की परवाह नहीं करता है। अर्थात् प्राणपन से तन्मय रहता है एवं इसे करके अपना जीवन दिन घड़ी आदि को धन्य एवं सफल मानता है इस पवित्र भूमिका में उसके द्वारा जो भी कुशल क्रियाएँ की जाती है, वे पूजन है।

कब ? प्रश्न हो सकता है कि पूजन कब करना चाहिए ? तो उत्तर होगा कि पूजा का यद्यपि कोई समय निश्चित नहीं कर सकते हैं, हर किसी समय में पूजा की जा सकती है। कभी द्रव्य सहित भाव से एवं कभी द्रव्य रहित भाव से। यद्यपि कहीं–कहीं तीनों सन्ध्याओं का भी उल्लेख शास्त्रों में है–

त्रिकालं क्रियतेभव्यैः पूजा पुण्यविधायिनी।
यां कृत्वा पापसंघातं हन्त्याजन्मसमार्जितम्।।140।।
पूर्वाह्न हरते पापम् मध्याह्ने कुरूते श्रियम्।
ददाति मोक्षं संध्यायां जिनपूजा निरन्तरम्।।141।।उ.श्रा.।।

पौवाह्निक (प्रातःकाल संबंधी), मध्याह्निक (दोपहर संबंधी) और अपराह्निक (सायंकाल संबंधी) तीनों समयों की विधि और क्रम में अंतर है। यथा– प्रातः काल में जल, चंदन आदि अष्ट द्रव्य से, मध्याह्न में पुष्प से और सायंकाल में दीप/धूप से अथवा अष्टाह्निक पर्व में नंदीश्वर पूजा, सोलह कारण पर्व में सोलहकारण पूजा, पर्यूषण पर्व में दशलक्षण पूजा इत्यादि। यद्यपि स्थूलता में भेद है तथापि गहराई में देखें तो कोई खास भेद नहीं है। किन्तु इतना जरूर है कि प्रातःकाल में की गई पूजा प्रशस्त एवं प्रशंसनीय होती है। उस समय प्रकृति में शीतलता होती है। मस्तिष्क भी हल्का होता है। अतः प्रातःकाल में तो निश्चित ही पूजा करना चाहिए। पूजा जहाँ तक हो बिना खाए–पिए ही करना चाहिए।

देवपूजामनिर्माय मुनीननुपचर्य च।
यो भुंजीत गृहस्थः मन्स भुंजीत परं तमः।।107।। (यश.च.)

खाना खाने के बाद आलस्य एवं तन्द्रा आते हैं जिससे मानसिक तनाब बढ़ता है और फिर पूजा में उतना मन नहीं लगता है जितना कि प्रातःकाल में लगता है।

दूसरी बात यह भी है कि भक्त की परीक्षा का एक अनूठा अवसर है। उसके समक्ष एक साथ दो अवसर उपस्थित है; एक भोजन का एवं दूसरा पूजन का। उसकी दृष्टि में भगवान का ही प्रथम स्थान होगा। भगवान के बिना उसके लिए संसार सूना है। उसकी उसे कोई भी कीमत नहीं है। यही कारण है कि वह प्रातः बिना कुछ खाए ही अपने आराध्य के प्रति आराधना हेतु कदम बढ़ाता है और यही उसकी सत्य भक्ति है। अतः प्रातःकाल बिना कुछ खाए–पिए ही भगवान की पूजा करनी चाहिए। कहा भी है **"पहले देव पूजा, फिर काम दूजा"।**

और भी देखिए–

देवानपूज्य यो भुंक्ते पात्रायान्धो अप्रदाय च।
आरम्भोत्थेन पापेन स गृही मुच्यते कथम्।।8।।

जो मनुष्य अपने पूज्य देवों (जिनेन्द्र देव) की पूजा न करके और पात्रों को आहार न देकर भोजन करता है वह गृहस्थ आरम्भ जनित पाप से कैसे छूटेगा ? अर्थात् नहीं छूट सकेगा।

जो मनुष्य गृहस्थ होकर के भी देव पूजा किए बिना और साधुओं की सेवा किए बिना भोजन करता है, वह महापाप करता है; ऐसा समझना चाहिए। अतः भगवान की पूजा करके ही भोजन करना चाहिए।

पूजन कभी भी दूसरों (जैस पुजारियों) के द्वारा या अन्य किसी के द्वारा नहीं कराना चाहिए क्योंकि दूसरा व्यक्ति लोभ या भय से पूजन तो कर देगा किन्तु उसकी सच्ची श्रद्धा या भक्ति आदि न होने के कारण मात्र नौकरी या मजदूरीवत् ही उसकी सारी क्रिया होगी और ऐसा होने से मूर्ति की अविनय या विराधना होगी। यथा स्वयं ही धर्मलाभ से वंचित ही रह जाएंगे; जैसा कि सोमदेवाचार्य ने यशस्तिलक चम्पू में कहा भी है–

धर्मेषु स्वामि सेवायां सुतोत्पत्तौ च कः सुधीः।
अन्यत्र कार्य दैवाभ्यां प्रतिहस्तं समादिशेत्।।330।।

अर्थात् जो काम दूसरों से कराने योग्य है या जो भाग्याधीन है इनके अलावा पूजा आदि धार्मिक कार्य एवं स्वामी की सेवा तथा पुत्रोत्पत्ति को कौन बुद्धिमान् मानव दूसरों के हाथ से कराने के लिए आदेश देगा ? अर्थात् विवेकी पुरुष को उक्त कार्य स्वयं ही करना चाहिए।

आत्म वित्त परित्यागात् परैर्धर्म विधायने।
निःसंदेहमवाप्नोति पर भोगाय तत्फलम् ।।331।।

अर्थात् जो अपना धन देकर दूसरों के हाथ से धर्म कराता है वह उसका फल दूसरों के भोगनें के लिए प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है अर्थात् उसका फल दूसरे ही भोगते हैं।

कैसे ? पूजा सदा यथाशक्य (यथाशक्ति) द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की शुद्धि पूर्वक होना चाहिए। क्योंकि शुद्धि बिना पूजा नहीं हो सकती है; वह तो एक मात्र खानापूर्ति ही होगी। अतः हमें द्रव्य आदि की शुद्धि तो यथाशक्य जिस तरह से होनी चाहिए उसे तो रखनी ही चाहिए किन्तु भावों की शुद्धि शक्ति से भी अधिकाधिक रखनी चाहिए।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्।
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ।।4।। (स्वस्ति मंगल पाठ)

द्रव्य शुद्धि को हम मुख्यतः आठ रूप में बाँट सकते है– यथाः

(1) **काय शुद्धि (स्नानादि)**	(2) **वस्त्र शुद्धि**
(3) **जल शुद्धि**	(4) **पात्र शुद्धि**
(5) **द्रव्य शुद्धि**	(6) **क्षेत्र शुद्धि**
(7) **काल शुद्धि**	(8) **भाव शुद्धि**

काय शुद्धि– शुद्ध छने जल से पूर्ण स्नान करने के पश्चात् मुख– शुद्धि भी (शुद्ध) छने जल से कर लेनी चाहिए अर्थात् कुल्ला दातौन या मंजन कर लेना चाहिए। वचनों को भी उस समय मर्यादित उचित एवं मिष्ठ बोलना चाहिए। उस समय असत्य, मायापूर्ण, कष्टदायक या गर्वपूर्ण भाषा नहीं बोलनी चाहिये।

वस्त्र शुद्धि – वस्त्र मुख्यतः धोती और दुपट्टा ही होना चाहिये; यही हमारी प्राचीन परम्परा है। वेश या पोशाक (ड्रेस) का भी बड़ा प्रभाव (महत्त्व) होता है। उससे भी परिणामों में अन्तर आता है। जैसे कि पुलिस, मिलेट्री, वकील, जज आदि जिस समय अपनी–अपनी ड्रेस में होते है उस समय उनके परिणाम दूसरे होते है। और बिना ड्रेस में भिन्न ही होते है। धोती दुपट्टा पहनने में यदि प्रमाद या शर्म होती है तो निश्चित ही आपकी भाव हिंसा है और भाव हिंसा वाला पूजा कैसे कर सकता है ? हाँ, इतना जरूर है कि आवश्यकता में, बीमारी या परेशानी

आदि में धोती–दुपट्टा उपलब्ध न हो सके तो अलग बात है। लेकिन फिर भी उसका पूर्ण प्रयास करना चाहिये। यदि करते है (पूजा) तो वह निष्प्रयोजन ही होगी। साथ ही वस्त्र फटे पुराने, मैले अति छोटे भी नहीं होने चाहिये।

खंडिते, गलिते छिन्ने, मलिने चैववासनि।
दानं पूजा जपो होमः स्वाध्यायो विफलं भवेत्।।139।।उ.मा.श्रा.।।

सिल्कन (रेशम) आदि अशुद्ध वस्तुओं से बने वस्त्र भी नहीं होने चाहिये।

जल शुद्धि – जल शुद्ध और छना होना चाहिये, उसकी जीवानी भी यथास्थान (जिस कुएं आदि का जल हो उसी में) विधिपूर्वक ड़ालना चाहिये। पश्चात् जल को 48 मिनट के अन्दर लौंग आदि डाल कर या अग्नि आदि से उबालकर प्रासुक कर लेना चाहिये। फिर उसे सावधानी से रखना चाहिये। जिससे कि कोई अशुद्ध व्यक्ति, पक्षी, जानवर आदि न छू सकें। उसे ढ़क कर रखना चाहिये जिससे दूसरे जीव या उसकी बीट आदि उसमें न पड़े। उसका प्रयोग इतनी सावधानी से करना चाहिए कि जिससे वह गर्म पानी नाली आदि में ना जावे अन्यथा जीवों की विराधना होगी। पूजन के बर्तन भी पूर्ण (पूरे) होने चाहिये ; यथा कलश, ठोना, आरती, धूपदान, गंधोदक पात्र, चंदन कटोरी, रकेवी, जल चढ़ाने का पात्र, अभिषेक पात्र, द्रव्य रखने एवं चढ़ाने की थालियाँ आदि।

पात्र शुद्धि– पूजन के पात्र (बर्तन) को अच्छी तरह से देखकर ही पूर्ण रूप से धो लेना चाहिए तथा चौकी, टेबल, पाटा आदि पूजन सहायक उपकरणों को भी शुद्ध कपड़े से मांज करके शुद्ध जल से धो लेना चाहिए। तत्पश्चात् ही पूजन के पात्र रखना चाहिये।

द्रव्य शुद्धि – अष्टद्रव्य की सामग्री अच्छी और उचित होनी चाहिए। दो नम्बर की (मिलावट सहित) नहीं होनी चाहिये। अष्टद्रव्य को प्रथमतः अच्छी तरह शोधन करना चाहिए। उसमें जीव, उनका कलेवर, नख, बीट आदि नहीं होना चाहिए। पश्चात् उसे सावधानीपूर्वक दो – तीन बार धो लेना चाहिए इसके बाद उसे थाली में उचित मात्रा में यथाक्रम से लगाना चाहिए। चावल साबूत (अखण्ड) एवं साफ होना चाहिये। नैवेद्य भी शुद्ध एवं मर्यादित होना चाहिए, दीपक शुद्ध घी या कपूर आदि का होना चाहिए। धूप शुद्ध एवं ताजी होनी चाहिए। फल घुने या अति तुच्छ नहीं होने चाहिए। चंदन भी शुद्ध एवं छिला हुआ होना चाहिए।

क्षेत्र शुद्धि – क्षेत्र शुद्धि भी उचित होनी चाहिए। उसे हम निम्न भागों में बांट सकते है :– यथा–

1) जल लाने का क्षेत्र – कुआँ
2) द्रव्य धोने का क्षेत्र (स्थान)
3) पूजन करने का क्षेत्र, और
4) स्वयं खड़े होने का क्षेत्र इत्यादि।

इन सभी स्थानों में किसी प्रकार की गंदगी आदि नहीं होनी चाहिए।

काल शुद्धि – पूजन के योग्य समय का नाम काल शुद्धि है। पूजन यथा समय पर होना चाहिए। सूतक, पातक आदि की जो सीमा है उसके अन्दर–अन्दर तक अशुद्ध काल कहा है, अतः तब तक द्रव्य पूजन नहीं करना चाहिए।

भाव शुद्धि– समस्त शुद्धियों में प्रमुख भाव शुद्धि ही हैं, यद्यपि इसकी हम गिनती नहीं कर सकते तथापि उसके आवश्यक अंशों को निम्न रूप से देखेंगे–

1) पूज्य, पूजा और 'पूजा के फलों' पर विश्वास (श्रद्धा) होना।
2) निरालस्य हो विवेक एवं कुशलता से उसमें तत्पर होना।
3) यहाँ वहाँ की वार्ता करनें में या सुनने में अपना उपयोग नहीं ले जाना।
4) यत्र–तत्र दृष्टि भी नहीं दौड़ाना।
5) टिक करके न तो खड़े होना / रहना और न तो टिक कर बैठना।
6) पैर बार बार लचकाना (हिलाना) नहीं।
7) अपने हाथ को नाक मुँह, कान आँख आदि मल द्वारों पर नहीं लगाना।
8) शरीर नहीं खुजलाना, यदि खुजलाया हो तो हाथ धो लेना चाहिए।
9) अपने कपड़ों को या पूजन के पात्रों को अस्त–व्यस्त नहीं करना।
10) पूजन की विधि के क्रम का भी उल्लंघन नहीं करना अर्थात् अत्यधिक सावधानीपूर्वक के अर्थ में उपयोग लगाते हुए निर्मल एवं प्रसन्न भावों में पूजन करना चाहिये।
11) अधिक जोर से उच्चारण भी नहीं करना।
12) पूज्यों के एकदम सामने से ही पूजन नहीं करना।
13) पूजन में आकुलता भी नहीं करना।

पूजन के भेद (प्रकार) – III

पूजा के मुख्य दो प्रकार है– (1) द्रव्य पूजा (2) भाव पूजा।

पूजा द्विप्रकारा द्रव्य पूजा भाव पूजा चेति।

अथवा पूजा के मुख्य चार प्रकार हैं यथाः

प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदार्चनम्।

चतुर्मख महः कल्पद्रुमाश्चाष्टान्हिकोऽपि च।।26/38।। म.पु.

अर्थात् जिनेन्द्र पूजा के मुख्य चार प्रकार इस प्रकार है–

(1) **सदार्चन**– इसका दूसरा नाम नित्यम ग्टह है। गृहस्थ इसे प्रतिदिन करता है।

(2) **चतुर्मुख पूजा** – इसका दूसरा नाम चतुर्मुख पूजा है। इसे महा मुकुटबद्ध राजा कहते हैं।

(3) **कल्पद्रुम राजा**– इसे चक्रवर्ती करते हैं। इसमे मुँहमांगा किमिच्छित दान दिया जाता है।

(4) **अष्टाह्निका पूजा** – इसे चारों प्रकार के देव नन्दीश्वर द्वीप में जाकर लगातार आठ दिन करते हैं। शेष मनुष्य अपने स्थान पर ही स्थापना–निक्षेप के माध्यम से यह पूजन करते हैं।

(1) **भाव पूजा**– परिणामों को निर्मल एवं पवित्र करके द्रव्य के बिना जो मात्र अपने आराध्य के गुणों का स्मरण, स्तुति, वंदना, चिन्तन या ध्यान किया जाता है, वह भाव पूजन है। इसके मुख्य अधिकारी मुनिराज या आरम्भ परिग्रह त्यागी प्रतिमा धारी श्रावक होते हैं। शेष गृहस्थ अष्टद्रव्य सहित भाव पूजन करते हैं। हाँ, द्रव्याभाव में सूतक पातक आदि के कारण शेष गृहस्थ भी ऐसे होते हैं। भाव पूजा के विषय में कहा भी है–

काऊणाणंतचउट्ठयाइगुणकित्तणं जिणाईणं।

जं वंदणं तियालं कीरइ भावच्चणं तं खु।।456।।

पंच णमोक्कार पएहिं अहवा जावं कुणिज्ज सत्तीए।

अहवा जिणिंदथोत्तं वियाण भावच्चणं तं पि ।।457।।

पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं रूव वज्जिवं अहवा।

जं झाइज्जइ झाणं भावमहं तं विणिद्दिट्टिं।।458।। (वसु श्रा.)

अर्थात् परम भक्ति के साथ जिनेन्द्र भगवान के अनंत चतुष्टय आदि गुणों का कीर्तन करके जो त्रिकाल वंदना की जाती है, उसे निश्चय से भाव पूजा जानना चाहिए। अथवा पंच णमोकार पदों के द्वारा अपनी

शक्ति के अनुसार जाप करें। अथवा जिनेन्द्र देव के स्तोत्र अर्थात् गुणगान करने को भावपूजन जानना चाहिए। अथवा पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत रूप जो चार प्रकार का ध्यान किया जाता है उसे भी भाव पूजा कहा गया है। इस भाव पूजा के मुख्य अधिकारी मुनिराज ही है। कहा भी है :

जिनेश्वर गुण ग्राम रंजितैर्यति सत्तमैः।

पूजा भावेन सत्कार्या सर्व पापापहारिणी ।।179 ।। (उ.श्रा.)

अर्थात् जो मुनिराज भगवान जिनेन्द्र देव के गुणों के समूह में तल्लीन हो रहे है। उन्हें अपने भावों से ही भावपूजा करनी चाहिए क्योंकि भाव–पूजा भी समस्त पापों का नाश करने वाली होती हैं।

(2) **द्रव्य पूजा**– द्रव्य पूजन 'उत्तम और पवित्र अष्टद्रव्य' की प्रधानता से की जाती है। यद्यपि इसके कर्ता मुख्य रूप से गृहस्थ होते हैं जो कि न्यायोपार्जित धन के त्याग हेतु करते हैं, अर्थात् अपने आराध्य पूज्यों के सानिध्य में या अनके समक्ष परिग्रह त्याग के हेतु द्रव्य से पूजन करते है यही उनकी द्रव्यपूजा का अर्थ है। दूसरी बात यह है कि गृहस्थ जीवन प्रायः अशुभ परिणामों की खान है, आर्त्त– रौद्र ध्यान एवं राग– द्वेष से अहर्निश आकीर्ण रहता है, उसका चित्त पताका (झण्डे) के सदृश चपल रहता है। अतः परिणामों को स्थिर करना उसके लिए अति कठिन है। यही कारण है कि पूर्वाचार्यों ने उसे 'द्रव्य सहित भाव पूजन' करने का उपदेश दिया है। मन स्थिर करने के लिए द्रव्य एक आधार है, माध्यम है। द्रव्य पूजन की परिभाषा देते हुए आगम में कहा भी गया है–

य दव्वेण य जा पूजा जाण दव्व पूजा सा।

दव्वेण गंध सलिलाई पुव्व भणिएण कायव्वा।।448।। (वसु.श्रा.)

अर्थात् जलादि अष्टद्रव्य से प्रतिमादि की पूजा की जाती है, उसे द्रव्य पूजा जानना चाहिए। वह द्रव्य से अर्थात् जल गंध आदि पूर्व कथित पदार्थ समूह से (पूजन सामग्री से) करना चाहिए।

गंध धूपाक्षत स्त्रग्भिः प्रदीप फल वारिभिः।

प्रातः कालेप्युपचितिर्विधेया श्री जिनेशिनः।।128।। (उ.श्रा.)

अर्थात् प्रातःकाल के समय चल, चंदन, अक्षत, पुष्पमाला,
नैवद्य, दीप, धूप और फल इन आठ द्रव्यों से भगवान जिनेन्द्र की भाव सहित द्रव्य पूजा करनी चाहिए।

यह बात सत्य है कि द्रव्य पूजन में सावद्यता (आरम्भ आदि पाप) रहती ही है, जैसे जल छानना प्रासुक करना, द्रव्य धोना, दीप जलाना, धूप खेना इत्यादि। फिर भी श्रावक का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक क्रिया में

पूर्ण विवेक एवं बड़ी सावधानी रखें, हर कार्य कुशलता से करें और अपना उपयोग जिन पूजन में ही लगाये तो यह आरम्भ आदि में हुई थोड़ी सी हिंसा भी महान् पुण्य राशि को प्रदान कर सकती है। जैसे कि पूज्य समन्तभद्राचार्य ने स्वयम्भू स्तोत्र में कहा हुआ है कि :–

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहु पुण्य राशौ।
दोषाय नाऽलंकणिका विषस्य, न दूषिका शीत शिवाम्बुराशौ।।स्व. स्तो।।

और भी :–

सारंभइं ण्हवणाइयहं जे सावज्ज भणंति।
दंसणु तेहि विणासियउ इत्थु ण कायउ भंति।।204।।(सावय धर्म्य दोहा)

अर्थात् जो अभिषेक आदि के समारम्भों को सावद्य दोषपूर्ण कहते है। उन्होंने सम्यग्दर्शन का नाश कर दिया, इसमें कोई भ्रांति नहीं है।

पूजाभिषेक प्रतिमासु प्राप्ते जिनालये कर्मणि देव कार्ये।
सावद्य रूपं तु वदन्ति येऽपि जनाश्च ते दर्शन घातकाः श्रयुः ।।347।।
(वृतोद्योतन श्रा.)

अर्थात् जो लोग प्रतिमाओं के पूजन में, अभिषेक में, जिनालय के निर्माण में, प्रतिमाओं के निर्माण में या अन्य जिनदेव के कार्य को सावद्य (पापयुक्त) कहते हैं वे मनुष्य अपने और दूसरे के सम्यग्दर्शन के घातक है।

पूजा च विधि मानेन सावद्यं सिन्धु मुष्टिवत्।
यथा न शक्यते दूष्यं तथा पुण्यं न दूष्यते।।347।। (वृतोद्य.श्रा.)

अर्थात् जिस प्रकार मुट्ठी भर दूषित विष अपार सिन्धु के जल को दूषित नहीं कर सकता है उसी प्रकार विधान से प्राप्त होने वाले अपार पुण्य को अल्प सावद्य भी दूषित नहीं कर सकता है।

भक्त्या कृता जिनार्चेन हन्ति भूरि चिरार्जितम्।
या सा किं तन्न हन्तीभं यः सिंहः स न किं मृगम् ।।85।।
(पुरूषार्थ. श्रावका.)

अर्थात् भक्ति से की गई जिनपूजन चिरकाल के उपार्जित भारी पापों का भी विनाश करती है। वह क्या पुण्य संचय आदि से उत्पन्न हुए अल्प पाप का भी विनाश नहीं करेगी ? अर्थात् अवश्य ही करेगी। जैसे जो सिंह हाथी को मार सकता है तो क्या वह मृग (हिरण) को नहीं मार सकेगा ?

किं कृतप्राणिघातेन स्नानेनेतीह वक्ति यः।
स स्वेदाद्यपनोदाय स्नानं कुर्वन्न लज्जते ।।12।। (पु.श्रा.)

अर्थात् जो मनुष्य यह कहते हैं कि पूजन के लिए प्राणिघात करने वाले स्नान से क्या प्रयोजन है ? वह मनुष्य पसीना आदि को दूर करने के लिए स्नान करते हुए लज्जित क्यों नहीं होता ?

पुण्णरासि ण्हवणाइयइं पाउ लहु वि किउ तेण।
विसकणियइं वहु उवहिजल णउ दूसिज्जई जेण ।।207।।
(सावय दोहा)

अर्थात् अभिषेकादि की पुण्य राशि में यदि किसी ने लघु पाप भी कर लिया तो विष के एक कण से समुद्र भर का जल दूषित नहीं हो सकता।

इत्यादि द्रव्य पूजन में यत्किंचित् सावद्यता संभव है। यदि कोई कहे कि शक्य हिंसा को छोड़ देना चाहिए तो शक्य तो सभी है। गृहस्थादि में होने वाली हिंसा भी छोड़ना शक्य ही तो है तो प्रथमतः उसे ही (भी) छोड़ना चाहिए और इसे छोड़ने का यही क्रम है।

फिर भी आप कहो कि दीप जलाने में या धूप खेने में अधिक हिंसा होती है, इसे नहीं करना चाहिए। तो फिर भी मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या वे आचार्यादि नहीं जानते थे कि दीप जलाने और धूप खेने आदि में हिंसा होती है। फिर क्यों अष्टद्रव्य में इन्हें जोड़ा ? नहीं जोड़ते। आठ से भी कम द्रव्यों का प्रतिपादन करते अथवा अन्य वस्तुयें जोड़ देते। अथवा कोई भी अन्य आचार्य उनका प्रतिषेध करते किन्तु उन्होंने भी प्रतिषेध नहीं किया ? अपितु "**सावद्य लेशो बहु पुण्य राशौ**" कहकर उसकी संभावना व्यक्त की है। कारण यह है कि वे जानते थे कि गृहस्थ का धर्म है, सावद्य के बिना इसमें उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। कुछ हिंसा तो संभव ही है किन्तु इसके पूर्व गृह आदि में होने वाली स्थूल हिंसा आदि से सर्व प्रथम निवृत्त होता है फिर शनैः शनैः पूजा आदि में होने वाली हिसां को भी छोड़ देता है। क्योंकि जैसे–जैसे विशुद्धि बढ़ती है वैसे–वैसे उसके अन्दर करूणा भी बढ़ती जाती है। अहिंसा की ओर उसकी प्रवृत्ति होती है। वह हर जीव की रक्षा के प्रति कदम बढ़ाता है। ऐसा नहीं कि मन्दिर आदि के कार्य में क्षमा, दया, अहिंसा और गृह (घर) आदि के कार्यों में थोक रूप से हिंसा। यदि ऐसा है तो निश्चित ही समझों कि अभी सही अहिंसा नहीं है, कोरी वचनों की ही दया या अहिंसा है। क्योंकि यदि अहिंसा सत्य रूप में जागृत होती है तो सभी

जगह अहिंसा के ही भाव होते है और उस ओर सफल प्रयास होता। सभी स्थूल हिंसाओं को त्याग कर वह सूक्ष्म हिंसा त्याग के प्रति भी अपने कदम बढ़ाता है। ऐसी प्रवृत्ति ही उसकी सत्य, प्रशंसनीय एवं प्रमाणित होती है।

भ्रम– हम आज ''ढूढ़या पंथ'' की प्रवृत्ति क्यों ला रहे है ? उनके हेतुओं में क्यों बहे जा रहे है ? क्यों हम प्राचीन परम्पराओं की रक्षा नहीं कर रहे हैं ? मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं किन्तु प्राचीन आचार्यों के वाक्यों और उस समय की परंपरा को पूर्णतः ध्यान में रखना है। और किसी भी तरह से उसमें नये पंथ का प्रवेश नहीं होने देना है।

आज **अभिषेक** के विषय में भी अनेक प्रश्न चिह्न है। एक हवा – सी चली थी कि अभिषेक किसी भी मूर्ति का नहीं करना चाहिए जिनका सप्रमाण उत्तर जैनाचार्यों ने और प्रसिद्ध विद्वानों ने दिया था और स्पष्टतः घोषित किया था कि अभिषेक पूजन का प्रथम अंग है। यह गृहस्थों के लिए आवश्यक ही नहीं अत्यावश्यक है।

दूसरा **स्थापना** के विषय में भी यही चर्चा उड़ी थी कि जिन बिम्ब के समक्ष (सामने ही) मौजूद होने पर स्थापना नहीं होनी चाहिए। किन्तु कपोल कल्पित चर्चा भी अधिक समय तक नहीं टिक पायी क्योंकि समस्त प्राचीन पूजन पाठ विधानों एवं प्रतिष्ठा ग्रंथों में इसका (स्थापना) पूर्ण रूपेण वर्णन हैं और इसे पूजन का दूसरा, तीसरा, चौथा अंग माना गया है। इसी से ठोने (अष्ट मंगल द्रव्य में होने वाले एक मंगल द्रव्य) की सार्थकता है, इत्यादि। स्थापना हमारी प्राचीन परम्परा है, इसका भी हमें पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

पहनावा– गृहस्थों को पूजा सदा स्नान करके ही करनी चाहिए। कहा भी गया है कि :

अंग प्रक्षालनं कार्यं स्नानं वा गालितोदकम्।

धौतं वस्त्रंततो धार्यं शुद्धं देवार्चनोचितम्।।346।। उपासका. अ.

अर्थात् पूजा करने से पहले छने शुद्ध जल से अंग प्रक्षालन या स्नान करना चाहिए। पश्चात् देव–पूजन के योग्य धुला हुआ शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये।

फासुक जलेण ण्हाइय णिवसियं वत्थाइं गंपितं ठाण।

इरियावहं च सोहिय उवसिसयं पडिमा आसेण ।।426।। भाव स.

अर्थात् पूजा करने वाले (श्रावक) को सर्वप्रथम प्रासुक जल से स्नान

करना चाहिए, शुद्ध वस्त्र पहनना चाहिए। फिर ईर्या समिति से पूजा के स्थान (मन्दिर) की ओर जाना चाहिए। वहाँ जाकर पद्मासन से बैठना चाहिए। अष्टद्रव्य स्वयं की ही होना चाहिए और उसे प्रतिदिन अपने घर से साथ में ही ले जाना चाहिए। कहा भी गया है :

नित्यमहो नाम शश्वज्जिन गृहं प्रति।

स्व गृहान्नीयमानार्चा गन्ध, पुष्पाक्षतादिका ।।27/38।। म.पु.

अर्थात् प्रतिदिन अपने घर से गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि ले जाकर जिनालय में श्री जिनेन्द्र देव की पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह कहलाता है।

पूजन की सभी द्रव्य धुली हुई एवं शुद्ध होना चाहिए। बिना धुली हुई द्रव्य चढ़ाने के फल के बारे में कहा भी गया है कि :

अद्यौत पत्र पूगानि यो ददाति जिनेश्वरे।

दासी सुतः स शून्यस्य गृहे संजायते–तराम् ।।184।।

अर्थात् जो जिनेश्वर के आगे बिना धोये हुए पत्र, सुपाड़ी आदि चढ़ाता है, वह अत्यंत दरिद्र के घर में दासी पुत्र (के रूप में) उत्पन्न होता है। (व्रतोद्योतन श्रा. श्री अभ्रदेव)

इति ज्ञात्वा जिनेन्द्राणां शुद्ध द्रव्येन पूजनम्।

क्रियते भव्य लोकेने भव्ये भव्यं मले मलम् ।।187।।

अर्थात् ऐसा जानवर भव्य लोगों को शुद्ध द्रव्यों से जिनेन्द्र देवों की पूजन करना चाहिए क्योंकि उत्तम वस्तु या उत्तम भाव का फल उत्तम ही होता है और मलिन वस्तु या मलिन भाव का फल भी मलिन ही होता है। (व्रतोद्योतन श्रावकाचार : श्री अभ्रदेव)

बिना धोती दुपट्टा पहने अर्थात् पैण्ट–शर्ट, पाजामा–कुर्ता, जाकट, कोट–सूट आदि पहने–पहने भी पूजन करना कदापि उचित नहीं है। यह प्रमाद व शिथिलता का चिह्न है। हाँ, उपलब्ध न हो या कोई सूतक–पातक आदि हो तो अलग बात है। अन्यथा साफ शुद्ध धोती दुपट्टा पहिनकर ही पूजन करना चाहिए। धोती, दुपट्टा भी अति तुच्छ, मलिन आदि नहीं होना चाहिये। कहा भी गया हैं :

खण्डिते, गलिते, छिन्ने, मलिने चैव वासनि।

दानं, पूजा, जपो, होमः स्वाध्यायो विफलं भवेत्।।139।। उ.मा.श्रा.।।

अर्थात् छोटा (टुकड़ा) वस्त्र, गला, फटा और मैला वस्त्र पहनकर किया गया दान, पूजा, जाप, हवन स्वाध्याय निष्फल होता है।

पूजन के पात्र– यद्यपि हर प्राणी अपनी–अपनी योग्यतानुसार पूजन कर सकता है तथापि उसके विषय में कहीं–कहीं विशेष उल्लेख मिलता है। जैसे कि–

(1) अभिषेक– पूजन करने वाला व्यक्ति निरोगी हो अर्थात् मिरगी, कुष्ट, दमा आदि असाध्य रोगों से ग्रस्त न हो।
(2) सूतक–पातक आदि अशुद्धियों से युक्त न हो।
(3) उत्तम जाति (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य) वाला हो।
(4) सच्चे देव शास्त्र गुरू पर श्रद्धान रखने वाला हो।
(5) क्रोधी और वाचाल न हो।
(6) विषाद आदि से रहित हो।
(7) हीन या अधिक अंग–उपांग वाला न हो।
(8) लोभी व दीन न हो।
(9) व्यसनी न हो।
(10) अष्टमूल गुणों का धारी हो।

पूजन सामग्री IV

पूजन सामग्री को हम दो भांगों में बाँट सकते हैं –

(1) पात्र सामग्री (2) द्रव्य सामग्री

(1) पात्र सामग्री– दो थालियाँ (द्रव्य रखने व द्रव्य चढ़ाने हेतु), ठोना (स्थापना के लिए), दो कलश (जल व सुगंधी जल रखने हेतु), दो कटोरियाँ (जल व चंदन चढ़ाने हेतु), एक दीपक (कपूर, घी बत्ती आदि सहित), धूपखानी/धूपदानी (अग्नि का पात्र जिसमें धूप खेई जाती है), छोटी–छोटी दो रकेवियाँ, अभिषेक करने हेतु कम से कम दो (या पाँच) कलश, गंधोदक पात्र, जल पात्र, आरती, प्रक्षालन हेतु छन्ना, चंदन घिसने हेतु सिल (पत्थर) आदि होना चाहिये।

(2)द्रव्य सामग्री– जल, चावल, पुष्प केसर, चिटके, धूप, फल, घी कपास आदि।

सान्त्वना– घबराइए नहीं! पूजा आपके लिए कष्टकारी नहीं अपितु कष्ट हारी सिद्ध होगी। आप केवल उसकी विधि के अनुसार चले चलो। देर हो सकती है पर अन्धेर नहीं होगा। विशुद्धि एवं विवेकपूर्ण आपके कदम बढ़ते जाना चाहिये। फल के प्रति कामना भी नहीं होना चाहिये क्योंकि फल की कामना पूजा को पूर्ण नहीं होने देती है तथा (पूजा को) अधूरा ही छोड़कर पूजा को भी बदनाम कर उसे उपेक्षा की ओर लाती है। अतः निःकांक्षित निष्काम, निदान रहित पूजा ही सही पूजा है। उसी ओर चलो। लौकिक प्रशंसा या प्रतिष्ठा हेतु भी की गई पूजा पूजा नहीं है, वह तो एक व्यापार है। कोई भी समस्या नहीं होनी चाहिए। (आकुलता आदि) जैसे कि मन्दिर है या मूर्ति है या हमारी बारी है या हमारे सिवा अन्य कोई पूजा करने वाला नहीं है या नियम लिया है इसलिए पूजा करना ही है आदि किसी तरह की समस्या, आकुलता आदि नहीं होनी चाहिये अन्यथा पूजा मात्र एक पेशी (ड्यूटी) ही सिद्ध होगी।

उद्देश– पूजा का एकमात्र पवित्रतम उद्देश्य 'आत्मकल्याण' ही होना चाहिये। विषय कषायों से बचने के लिऐ ही होना चाहिये। गृहस्थी में उपार्जित कर्मों से छूटने के लिए ही होना चाहिये। और एक माध्यम ही होना चाहिए जिस से आगे चलने की शक्ति और साहस जगाया जा सकें।

पूजन के समय दिशा का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। यथा :–

तथार्चकः पूर्व दिश चोत्तरस्यां न सम्मुखः।
दक्षिणस्यां दिशायां च विदिशायां च वर्जयेत।।116।।उ.श्रा.।।

अर्थात् पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके ही पूजा करना चाहिए। दक्षिण या विदिशा (उल्टी) दिशा की ओर मुँह करके पूजन नहीं करना चाहिए।

पश्चिमाभिः मुखः कुर्यात् पूजा चेच्छ्री जिनेशिनाम्।
तदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंतति।। 7 ।।
आग्नेयां च कृता पूजा धन हानिर्दिने दिने।
वायव्यां संतति नैव नैऋत्यां तु कुलक्षयः ।। 8 ।।
ईशान्यां नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी।। 119।। उ.श्रा.)

पश्चिम दिशा– संतति नाश, दक्षिण दिशा– संतति अभाव।
आग्नेय– धन हानि, वायव्य– संतति अभाव,
नैऋत्य– कुल क्षय। ईशान्य– सौभाग्य हरण।

इन दिशाओं में मुख करके पूजन नहीं करना चाहिए।

पूर्व – शांति, उत्तर– धन

इन दोनों दिशाओं में से किसी भी एक दिशा की ओर मुँह करके पूजन करना चाहिये। और भी कहा गया है।

उदङ्ः मुख स्वयं तिष्ठेत्प्राङ् मुखं स्थापयेज्जिनम्।
पूजाक्षणे भवैन्नित्यं यमी वाचंयमक्रियः।।70।।यशस्ति।

अर्थात् पूर्व दिशा की ओर जिनेन्द्र भगवान की स्थापना कर स्वयं उत्तर दिशा की ओर मुख करके खड़े होना चाहिए। तथा पूजन के समय तक संयम (जीव रक्षा और इन्द्रियों को अपने वश में रखना) और पूजन संबंधी शब्दों/वाक्यों/मन्त्रों के अलावा अन्य चर्चाओं से मौन रखना चाहिए।

पूजन सदा तिलक लगाकर ही करना चाहिए। कहा भी है कि :

तिलकैस्तु विना पूजा न कार्या गृहमेधिभिः।
अंह्वि जानु, करांशेषु मूर्ति पूजा यथाक्रमम्।।
भाले कण्ठे हृदयम्भोजे उदरे चिन्ह् कारणैः।
नवभिस्तिलकैः पूजा करणीया निरंतरं ।।120–121।।उ.श्रा.।।

अर्थात् गृहस्थों को तिलक लगाये बिना कभी भी पूजा नहीं करनी चाहिए। उसे चरण घोटू, हाथ की कुहनी, हाथ, मस्तक,
ललाट, कण्ठ, हृदय और उदर इन 9 (नौ) स्थानों पर चंदन से तिलक

लगाकर ही पूजा करनी चाहिए।

पेट और घोटूं में चंदन (तिलक) क्यों और कैसे लगाना चाहिए यह स्पष्ट नहीं हो सकता। किन्तु पुराने विद्वान् लोगों से 'नव–तिलक' के विषय में निम्नतः संकेत मिलते है–

(1) ललाट, (2,3) दोनों कान, (4,5) दोनों भुजाएँ
(6,7) दोनों कलांए, (8) गला, (9) वक्षस्थल।

इसका अर्थ स्पष्टतः प्रतिभासित हो जाता है। यथा :

ललाट (मस्तिष्क) – उत्तमांग का आभूषण तिलक है।
दोनों कानों के अग्रभाग – कुण्डल के सूचक है।
दोनों कलाएं – स्वर्ण कलश की सूचक है।
दोनों भुजाएं – बाजू बन्ध का सूचक है।
गला – हार का सूचक हैं।
वक्षस्थल – यज्ञोपवीत (जनेऊ) का सूचक है।

इसी उद्देश्य से उक्त स्थानों में तिलक लगाना चाहिए। और भी कहा गया है कि :–

मुक्ति श्रियः ललामं व तिलकं समुदाहृतम्।
तेनानर्थत्वमिन्द्रस्य पूजकस्य च तैर्विना ।।122।। उ.श्रा.

अर्थात् यह तिलक मुक्ति रूपी लक्ष्मी का सर्वोत्कृष्ट आभूषण माना जाता है। इसलिए बिना तिलक के पूजा करने वाले इन्द्र (पूजक) को इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती।

पूजन विधि– पूजन विधि के विषय में अधिकतम 4 उल्लेख मिलते हैं–

(1) **स्नपनं पूजनं स्तोत्रं ध्यानं श्रुतस्तवः।**
षोढ़ा क्रियोदिता सद्विदद्रव सेवासु गेहिनाम् ।।47।।8 यशति.।।

अर्थात् अभिषेक, पूजन, स्तोत्र (जयमाल), जाप, ध्यान और श्रुतभक्ति ये छह सद्क्रियाएं गृहस्थों को जिनेन्द्र पूजन में अवश्य करनी चाहिये।

(2) **प्रस्तावना पुराकर्म, स्थापना संनिधापनम् ।।71।। यशति.।।**

प्रस्तावना – श्री जी की स्थापना, सन्निधिकरण– मैं इन्द्र हूँ इत्यादि/अभिषेक किया।

पूजा– अष्ट द्रव्य से पूजन, पूजा फल – स्वर्ग मोक्ष प्राप्ति

(3) **आह्वाननं च प्रथमं ततः संस्थापनं परम्।**
सन्निधिकरणं कृत्वा पूजनं तदनन्तरम्।।147।। उमा.श्रा.।।
ततो विसर्जनं कार्यं ततः क्षमापणा मता।

प्रक्षालन उपरान्त विनयपाठ बोलते हुए मूर्ति को यथास्थान स्थापन करना चाहिये।

इस समय निम्नलिखित चौबीस बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(1) मूर्ति, को सावधानी पूर्वक उठाएँ व रखें। अच्छी तरह से पकड़े ताकि न तो मूर्ति कहीं गिर पाए और न ही कहीं पर टकराएँ।

(2) एक साथ दो या तीन मूर्तियों को नहीं लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से गिरने की सम्भावना रहती है।

(3) मूर्ति को एक हाथ से भी न उठाना और न रखना चाहिए। न ही एक हाथ से अभिषेक अथवा प्रक्षालन करना चाहिये।

(4) प्रक्षालन करते समय मूर्ति को उल्टा नहीं करना चाहिये।

(5) बड़ी–बड़ी मूर्तियों का प्रक्षालन करते समय मूर्ति (यों) पर अपना वजन नहीं रखना चाहिए। न ही मूर्तियों पर वस्त्रादि रखना चाहिये।

(6) मूर्ति जहाँ भी रखी जानी हो वह पांडुक शिला, थाली, सिहाँसन, चौका या तख्त आदि हिलना नहीं चाहिये। यदि हिलता हो तो ठीक कर लेना चाहिए।

(7) अभिषेक इस प्रकार करें कि न तो छींटे उचटें न ही कलश मूर्ति से टकराएँ।

(8) अपने वस्त्र भी इस प्रकार व्यवस्थित किए रखें कि वह न तो मूर्ति से स्पर्शित हों, न दीपक आदि की लपेट में आएँ, न उनसे उलझकर कोई बर्तन आदि गिर सके।

(9) अभिषेक या पूजन के बर्तन पटकना, घसीटना, फेंकना, गिराना नहीं चाहिए।

(10) अभिषेक या पूजन करते समय किसी से बात नहीं करनी चाहिए क्योंकि चर्चा करने से उपयोग बँट जाता है और विशुद्धि से हट जाता है।

(11) मन में घर, दुकान, दफ्तर आदि संबंधी कोई विचार नहीं लाना चाहिए। यदि आ जाएँ तो उन पर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए।

(2) अभिषेक या पूजन पाठ बोलते समय इतनी सावधानी से बोलना चाहिये कि थूक आदि न उचटें।

(13) अभिषेक और पूजन का प्रत्येक कार्य प्रसन्नता (हर्ष) विशुद्धता पूर्वक यथाक्रम और यथासमय करना चाहिये।

(14) अभिषेक और पूजन के समय टेबिल/दीवाल आदि से नहीं टिकना चाहिए। न ही उस पर हाथ आदि का वजन रखना चाहिए।

(15) पैरों को सावधान रखना चाहिए। घोड़े जैसा एक टेढ़ा व दूसरा सीधा नहीं करना चाहिए।

(16) पूजन आदि बर्तनों को संगीत का साधन नहीं बनाना चाहिए। अर्थात् उनको बजाने आदि के कार्य में नहीं लेना चाहिये।

(17) अपनी शुद्धता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। किसी भी प्रकार की अशुद्धि से हमें स्पर्शित नहीं होना चाहिए।

(18) जिनेन्द्र देव का भावभीना गुण स्मरण करना व उन गुणों की प्राप्ति की भावना भाते रखना चाहिए।

(19) पूजा करते समय किसी का उपहास, नकल व निंदा नहीं करनी व सुनना चाहिए।

(20) मन में किसी प्रकार का विषाद या मनोमालिन्य नहीं लाना चाहिए।

(21) पूजन के फलों की कोई कामना (इच्छा) नहीं होना/करना।

(22) पूजा–पाठ आदि शुद्ध व साफ बोलना चाहिए। आतुरता से जल्दी–जल्दी नहीं बोलना चाहिए।

(23) पूजन पाठ संबंधी पुस्तक या जिनवाणी द्रव्य, गीले स्थान पर दीपक के निकट नहीं रखना चाहिए। न ही उस पर द्रव्य, दीपक आदि रखना चाहिए।

(24) मूर्ति प्रक्षालन के पश्चात् यदि कोई मुनिराज आदि हों तो प्रथमतः गन्धोदक उन को देना चाहिए। पश्चात् विनय पूर्वक स्वयं गन्धोदक लें। शेष गन्धोदक यथा स्थान ढ़ँककर रख देना चाहिए।

अब इस के बाद 'द्रव्य चढ़ाने योग्य थाली' में अपने देश, प्रान्त या ग्राम में प्रचलित स्वास्तिक आदि से 'मंगल चौक' बना लेना चाहिए और फिर चढ़ाने योग्य पूजन पात्रों को यथा क्रम से जमा लेना चाहिए यथा :

ठोणा में – 卐 श्री ॐ + + + +

थाली में – 卐 श्री ॐ अ

पश्चात् पूजा पीठिका, मंगल विधान, पढ़कर, सहस्रनाम, पंचकल्याणक पंच परमेष्ठी आदि के अर्घ्य देकर स्वस्ति मंगल एवं महर्षि उपासना पढ़कर सर्वप्रथम देव–शास्त्र–गुरू पूजन करना चाहिए।

(2) आह्वान– आह्वान पूजन का दूसरा अंग है। आह्वान का अर्थ होता है बुलाना। भक्त जब भक्ति में तल्लीन होता है, तब वह भगवान् को अपने से बहुत दूर नहीं समझता अपितु अति निकट समझता है। उस समय उनकी दृष्टि में भगवान् को बुलाना असंभव एवं कठिन नहीं होता अपितु अति सुगम और सहज होता है। वह उन्हें अपनी भक्ति के माध्यम से चाहे जब बुला सकता है। उनका साक्षात् प्रत्यक्षीकरण करता है। भले ही वे बाहर से न आते हों, लेकिन वह अपनी कल्पना में प्रत्यक्ष ही बुलाता है और उन्हें साक्षात् रूप में पाता है। वह भक्ति विभोर होकर

प्रसन्नता से 1 या 3 अथवा अनेक साबुत (अखण्ड) पुष्प हाथ में लेकर मूर्ति की ओर निहारता हुआ हाथ फैलाकर कहता है कि 'अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इति आह्वान) अर्थात् 'आप आइये' और हाथ के पुष्प को ठोणा में छोड़ता है।

(3)स्थापन– स्थापन पूजा का तीसरा अंग है। स्थापन का अर्थ है 'रोकना और बैठने का संकेत देना'। वही भक्त मुकुलित हाथ में 1, 3 या अनेक साबुत (अखण्ड) पुष्प लेकर, भक्ति में आए हुये भगवान् से कहता है, "हे प्रभु! आप यहां ठहरिये ठहरिये" अर्थात् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्) इत्यादि बोलकर हाथ के पुष्प को ठोने में छोड़ देता है।

(4) सन्निधिकरण– सन्निधिकरण पूजन का चौथा अंग हैं। यहाँ पर भक्त पुनः हाथ में 1,3 या अनेक पुष्प लेकर (हाथ में) उसे मुठ्ठी में बंद कर लेता है। मुठ्ठी हल्की बाँधता है और उसे वक्षस्थल (हृदय) से स्पर्शित करता हुआ भावना भांता है कि हे प्रभों! आप बाहर नहीं अपितु मेरे मन मन्दिर के पवित्र विशुद्ध हृदय कमलासन पर विराजमान होइए। इसे वह

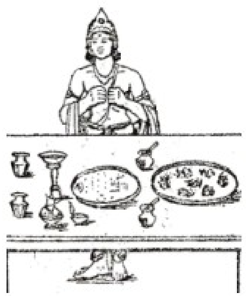

निम्न शब्दों द्वारा कहता है, "अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्" (इति सन्निधिकरण) इत्यादि कहकर पुष्पों को ठोणें में छोड़ देता है। अब वह आभास करता है कि मेरे प्रभु तो मेरे हृदय में विराजमान हो चुके है, इत्यादि सोचकर वह बहुत ही गद्‌गद् होता है। विनय को पूर्ण सजगता से पालन करता हुआ भक्ति–गंगा में गोता लगाता है एवं भगवान् से वार्ता करता है।

(5) द्रव्य पूजा– द्रव्य पूजा पाँचवाँ अंग है। इसका दूसरा नाम अष्टद्रव्य पूजन भी है। जहाँ भक्त भगवान् से साक्षात् (प्रत्यक्ष) करता है। द्रव्य पूजन के मुख्य आठ भेद हैं– जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल।

जल– जल एक निर्मल वस्तु है। जो मल धोने के प्रयोग में आता है। इसे कलशों के द्वारा दोनों हाथों से तीन या एक धारा के रूप में जल पात्र में ही चढ़ाना चाहिए। जल चढ़ाने का उद्देश्य जन्म, जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु (मरण) संबंधी रोगों को नष्ट करना है।

चंदन– यह एक शीतल पदार्थ हैं जो संताप को दूर करने के प्रयोग में आता है। यही कारण है कि इसे संसार ताप विनाश के लिए ही भक्त अपनी अनामिका अंगुली के द्वारा चढ़ाता है (पैंती अंगुली से चढ़ाता है)। चंदन घीसा हुआ होना चाहिए, पानी में मिश्रित नहीं।

अक्षत– अक्षत का अर्थ अखण्ड है। अखण्ड धवल चावलों को अक्षत कहते हैं। अक्षत को सदैव खड़ी मुठ्ठी से चढ़ाना चाहिए। इस का उद्देश्य अक्षत पद (सिद्ध पद) प्राप्ति का होता है।

पुष्प– पुष्प का अर्थ फूल या पीले चावल है। लवंग (लौंग) आदि को भी पुष्प के प्रयोग में लाया जा सकता है। इसे सदैव दोनों खुले हाथों से ही चढ़ाना चाहिए। पुष्प काम वासनाओं के तीक्ष्ण बाणों को नष्ट करने के उद्देश्य से चढ़ाना चाहिए।

नैवेद्य– नैवेद्य का अर्थ है– व्यंजन/पकवान/सफेद चिटक है। यह भूख शमन का प्रतीक है। इसको दोनों हाथों से रकेबी में रखकर चढ़ाना चाहिए। इसको चढ़ाने का उद्देश्य एक मात्र उस क्षुधा को नष्ट करने का है जो प्रायः प्राणियों को नित्य लगा करती है। जिसके कारण शरीर शिथिल पड़ जाता है और अनन्त बली आत्मा भी दीन हीन हो जाती है।

दीप– दीप का अर्थ प्रज्जवलित घी का दीपक या कपूर का दीपक या पीली चिटक। यह अन्धकार–विनाश का प्रतीक है। इसे प्रत्येक बार अलग–अलग आरती उतारते हुए सावधानता से चढ़ाना चाहिए। दीप चढ़ाने का उद्देश्य मोह रूपी अंधकार को पूर्ण रूपेण नष्ट करना है। दीप भगवान के दायीं तरफ रखना चाहिए।

धूप–यह आठ या दस प्रकार की वस्तुओं का चूर्ण है। यह शीघ्र ज्वलनशील पदार्थ है। इसे अग्नि में ड़ाला जाता है। अनामिका, मध्यमा और अंगूठा इन तीन अंगुलियों से लेकर धूप डाली जाती है। इसका उद्देश्य यही होता है

कि जिस प्रकार यह धूप जल रही है उसी प्रकार आठों प्रकार के कर्म, जो कि मेरे अन्दर विद्यमान है, शीघ्र ही जल जाएँ। अष्ट कर्मों को जलाने का होता है। धूप शुद्ध एवं मर्यादित होना चाहिए। धूप घट भगवान् के बायीं तरफ रखना चाहिए।

फल– फल का अर्थ सर्व विदित है उसे थाली में लेकर चढ़ाना चाहिए। चढ़ाते समय उसके डंठल का भाग (जो भाग वृक्ष की ड़ाली से जुड़ा रहता है) भगवान् की ओर कर के चढ़ाना चाहिए। इसे चढ़ाने का एक मात्र उद्देश्य मोक्ष रूपी फल प्राप्ति का होता है। फल साबुत (अखंड), सुन्दर एवं अच्छे होना चाहिए।

अर्घ– यह स्वतंत्र कोई द्रव्य नहीं है बल्कि यह सभी आठों द्रव्यों से बनी एक मिश्रित वस्तु है। अर्घ का अर्थ होता है 'मूल्य'। इसे दोनों हाथों से रकेबी में लेकर चढ़ाना चाहिए। इसके चढ़ाने का उद्देश्य "अमूल्य निधि–मोक्ष की प्राप्ति का होता है।

ध्यान रखने योग्य सूत्र–

1. उक्त सभी द्रव्य शुद्ध, प्रासुक और मर्यादित होना चाहिए।
2. द्रव्य अति तुच्छ, टूटी–फूटी, निष्प्रयोजनीय व हीन नहीं होना चाहिए।
3. दीपक आदि के सद्भाव में दीप की पीली चिटकों में ही मात्र कल्पना नहीं होनी चाहिए। हाँ, अभाव या समाप्ति पर कल्पना की जा सकती है।
4. दीपक शुद्ध घी, कपूर आदि का होना चाहिए।
5. धूप घुनी हुई वस्तुओं की नहीं होनी चाहिए और न ही बाजार आदि

की होनी चाहिए।

6. पूजन करते समय लौकिक फलों की कामना (इच्छा) नहीं होनी चाहिए।
7. पूजा में आये हुए प्रत्येक छन्द/मंत्र का शुद्ध एवं पूर्ण उच्चारण होना चाहिए।
8. द्रव्य चढ़ाते समय बोले गए मंत्रों में उद्देश्य (लक्ष्य बिन्दु) का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। उसे छोड़ना नहीं चाहिए।
9. प्रत्येक द्रव्य विनयपूर्वक भक्ति से चढ़ाना चाहिए।
10. द्रव्य चढ़ाते समय द्रव्य इधर–उधर नहीं गिरना चाहिए क्योंकि उससे जीव आदि आयेंगे तथा आने–जाने वाले लोगों से उनकी विराधना संभव है।
11. द्रव्य दोनों हाथों से चढ़ाना चाहिए। दाहिने हाथ को प्रधानता देते हुए द्रव्य चढ़ाते समय आगे करना चाहिए।
12. द्रव्य पहले ही सोच–विचार कर पर्याप्त रख लेना चाहिए जिससे कि बीच में ही द्रव्य कम न पड़ जाये व बाद में पश्चाताप आदि न हो।
13. द्रव्य स्वयं की होनी चाहिए, दूसरों की नहीं।
14. पूजन के समय यदि स्वयं कोई वाद्य यंत्र आदि बजाना हो तो वे चमड़े आदि के नहीं होना चाहिए।
15. पूजन प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् इधर–उधर आना–जाना नहीं चाहिए, न बात करना चाहिए न देखना चाहिए। पहले से ही पुस्तक आदि सभी जरूरी चीजों की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

(6) जयमाल– पूजन का छठा भाग है जयमाल। जयमाल एक समासांत पद है जिसका सीधा–सादा अर्थ है 'जिन गुणों पर पूज्य ने जय प्राप्त कर ली है अर्थात् प्राप्त कर लिया है; उन गुणों का एक के बाद एक सविस्तार कीर्ति या स्तुति करना है। इसे भक्त अपने दोनों हाथ जोड़कर या आरती और अर्घ लेकर अथवा मात्र अर्घ लेकर बड़े उत्साह के साथ सुरीले और सुन्दर शब्दों में गाता है। इसका उद्देश्य उन पावन गुणों को प्राप्त करने का होता है जिन्हें उसके आराध्य ने प्राप्त कर लिया है।

(7) जाप– पूजन का सातवाँ अंग है जाप। मन में जो मंत्र बार–बार (9 बार) दोहराया जाता है उसे जाप या जप कहते हैं। कुछ क्षण के लिए शरीर आदि से ममत्व छोड़कर ही इसे किया जाता है। इसे कायोत्सर्ग भी कहते हैं।

सावधानमुद्रा या कायोत्सर्ग मुद्रा– कायोत्सर्ग मुद्रा में ही कायोत्सर्ग करना चाहिए। यह खड़े या बैठे दोनों तरह से हो सकता है। किन्तु उस समय शरीरादि से मूर्च्छा भाव घटाना आवश्यक है। यदि खड़े होकर (कार्यात्सर्ग) कर रहे हों तो ध्यान रखें कि अपने दोनों पैरों (एड़ी से पंजे तक) में चार अंगुल का अंतर रखे। किसी भी प्रकार का खिंचाव या ढ़ीलता नहीं होना चाहिए। इस मुद्रा में बिना अंगुली चलाए, 9, 27, 54 या 108 बार णमोकार मंत्र का या जिन परमेष्ठी की पूजन की है उनके नाम का मंत्रोच्चारण करना जाप या कायोत्सर्ग है। इसको करने का उद्देश्य पूजन में हुई त्रुटियों के परिमार्जन हेतु लिया गया दंड या प्रायश्चित है। इसे भी नियम से करना चाहिए।

(8) शांति पाठ– पूजन का आठवाँ भाग है 'शांति पाठ'। शांति का अर्थ है 'अशांति का अभाव'। भक्त की भावना अति प्रशस्त रहती है। वह यहाँ पर यह कामना करता है कि, "हे प्रभो! विश्व के प्रत्येक प्राणी को शांति प्राप्त हो। सभी प्राणी शांति पथ के अनुगामी बनें। किसी को भी कभी भी किसी भी प्रकार का दुख न हो।" इसे वह अपने पूजन की बची हुई द्रव्य को चढ़ाने वाली थाली आदि में, वर्षा की मुद्रा में चढ़ाता है और जल की तीन धाराएँ देता है। कहा भी गया है–

जाति र्जरा मरणमित्यनलत्रयस्य,
जीवाश्रितस्य बहुताप कृतो यथावत्।
विध्यापनाय जिनपाद युगाग्रभूमौ,
धारात्रयं प्रवर वारि कृतं क्षिपामि।।1।। पद्मनंदी पंचविः 19–1/848

अर्थात् जन्म, जरा और मरण – ये जीव के आश्रय से होने वाली तीन अग्नियाँ बहुत संताप को करने वाली हैं। मैं उनको शांत करने के लिए जिन भगवान के चरण कमल के आगे विधिपूर्वक उत्तम जल से निर्मित तीन धाराओं का क्षेपण करता हूँ।

(9) विसर्जन– पूजन का नौवाँ अंग विसर्जन पाठ है। इसका अर्थ है समाप्ति। क्षमा प्रार्थना या आभार प्रदर्शन। इसे भक्त अपने हाथ में तीन या नौं साबुत (अखण्ड) पुष्प लेकर, हाथ जोड़कर पूजन में अपने द्वारा हुई त्रुटियों का पश्चाताप करता हुआ क्षमायाचना करता है। साथ ही पूजन में सम्मिलित हुए देवी, देवता, मनुष्य आदि के प्रति बड़े हर्ष से कृतज्ञता प्रकट करता है कि आपने पूजा में उपस्थित होकर अर्थात् हमारे साथ जिनेन्द्र प्रभु की पूजाकर या जिनेन्द्र पूजा में आने वाले विघ्नों से रक्षाकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है। आप लोग इसी तरह हमेशा–हमेशा की उत्साह बढ़ाते

रहें। मेरे द्वारा यदि आप लोगों को कोई कष्ट हुआ हो तो क्षमा करें। अतं में नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करता है। यहाँ पूजन (की विधि) समाप्त हो जाती है। फिर भी कहीं–कहीं भक्तगण अपने पूज्य की बड़ी भक्ति से ईर्यापथ की शुद्धि से अपने आराध्य की तीन परिक्रमा लगाते हुए प्रार्थना करते हैं या भावना भाते हैं कि, 'हे प्रभों! मैं आपसे और कुछ नहीं चाहता हूँ सिवाय इसके कि जब तक मुझे निर्वाण (मोक्ष) पद की प्राप्ति नहीं हो पाती है तब तक आपके चरण कमल मुझे मिलते रहें। प्रतिदिन और बार–बार आपके चरणों की भक्ति मुझे मिलती रहे।''
इत्यादि।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।। 1 ।।
याचेऽहं याचेऽहं याचेऽहं जिन तव चरणारयोर्भक्तिं।
याचेऽहं याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव।। 1 ।।
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः।।7।। (समाधिभक्ति)

पश्चात् यथा अवसर स्वाध्याय करता है। यदि कोई मुनिराज आदि हों तो उनके दर्शन कर प्रवचनादि सुनता है। जाप देता एवं आत्मचिंतन करता है। पश्चात् अपने घर की ओर प्रस्थान कर जाता है।

पूजन समाप्त करके घर की ओर लौटते समय ध्यान रखें कि भगवान की ओर पीठ करके न लौटें। कहा भी गया है–

अग्रतो जिन देवस्य स्तोत्र मंत्रार्थनादिकम्।
कुर्यान्न दर्शयेत् पृष्ठं सम्मुखं द्वार लङ्घनम्।। (प्रासादमंडन)

अर्थात् जिनदेव के आगे स्तोत्र, मंत्र और पूजन आदि करे परन्तु बाहर निकलते समय अपनी पीठ नहीं दिखावे। सम्मुख ही पिछले पैरों से चलकर द्वार का उल्लघंन करें।

पूजा फल (39 उद्धरण) V

(1) **पूण्यानि च पूरयितुं। (आचार्य पूज्यपाद)**
– यह पूजन सम्पूर्ण पुण्य सामग्री को प्रदान करने वाली है।)

(2) **एया वि सा समत्था जिणभक्ती दुग्गाई णिवारेण।।**
(आचार्य शिवकोटि)
दुर्गति से बचने के लिए एक मात्र–भक्ति ही समर्थ है।

(3) **दातुं मुक्ति श्रियं कृतिनः (पूज्य पादाचार्य)**
यह जिनेन्द्र भक्ति मुक्ति श्री को प्रदान करने वाली है।

(4) **देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्वदुःख निर्हरणं (समंतभद्राचार्य)**
देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् की पूजा संपूर्ण दुखों को नष्ट करती है।

(5) **कामदुहिं काम दाहिनि (रत्न.क.श्रा.)**
समस्त काम वासनाओं को नष्ट करने वाली है और सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

(6) **जिनस्तात्येन सो हंत्रीं दुरितारातिं पातिं नः (आ.वीरनंदी)**
समस्त पापकर्म एक जिनेन्द्र भक्ति से नष्ट हो जाते है।

(7) **विघ्नाः प्रणश्यन्ति। (धवला टीका)**
जिन भक्ति से सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

(8) **अरहंत णमोकारों संयहिय बंधा दो असंखेज्ज गुण**
कम्म खयकार ओक्ति तत्व वि मुणिणं पवितिप्प सम्वादो
(जय धवला आचार्य वीरसेन)
जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत देव को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुखों से मुक्त हो जाता है।

(9) **अरहंत णमोक्कारो भावेण या जो करेदि पायदंमदि।**
सो सव्व दुक्ख मोक्खं पावदि अचिरेण कालेण।।
जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत देव को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुखों से मुक्त हो जाता है।

(10) **सुह सुद्ध परिणामेहिं कम्मख्याभावे तक्खयाणुं वक्तोदो।।**
(आचार्य वीरसेनाचार्य)
यदि कोई कहे कि शुभ उपयोग से कर्मों का नाश होता है यह बात असिद्ध है– सो भी ठीक नही है, ''क्योंकि यदि शुभ और शुद्ध इन दोनों परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जायें तो फिर कर्मों का क्षय हो नहीं सकता।''

(11) **दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मो न होई तेण विणा।**

(कुन्दकुन्दाचार्य) रयणसार–11)

दान और पूजा श्रावक का मुख्य धर्म है। इसके बिना श्रावकपना नहीं हो सकता।

(12) **सुह जोगस्स पवित्ति संवरणं कुणणादि असुह जोगस्स।**

(कुन्दकुन्दाचार्य)

पूजा आदि शुभोपयोग में जो प्रवृत्ति होती है वह अशुभ योग का संवर करती है।

(13) **भक्तिए जिणवराणे खोर्यादजं संचियं कम्मं ।।57।।**

(मु.आ. कुन्दकुन्दाचार्य)

जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति पूर्व संचित कर्मों का क्षय करती है।

(14) **एदेसि किदियम्मं कायत्वं निज्जरट्ठाए।। (कुन्दकुन्दाचार्य)**

ये सभी कृतिकर्म (पूजा वंदना आदि) निर्जरा के स्थान हैं। इन्हें सदा करना चाहिए।

(15) **अरहन्ते सुहभक्ति सम्मतं। (कुन्दकुन्दाचार्य)**

अरहन्तों में की गई शुभ भक्ति सम्यक्त्व है।

(16) **संसारस्य खय करं मा मोचोओ णमोक्कारं ।। (आ. शिवकोटी)**

यह नमस्कार संसार का क्षय करने वाला है। इसे कभी भी मत छोड़ो।

(17) **संसारुच्छेदण समत्यो ।। (आचार्य शिवकोटि)**

संसार का उच्छेद करने में यह सम्यक् नमस्कार समर्थ है।

(18) **जिनबिम्ब दंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स**
विमिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खय दंसणादो।
(धवल सिद्धान्त ग्रन्थः आ. वीरसेन स्वामी)

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से निधत्ति, निकाचित और मिथ्यात्व आदि कर्म मल का क्षय देखा जाता है।

(19) **आलंबनं भवजले पततां जनानां। (आ. मानतुंगाचार्य)**

हे प्रभो! भव संसार में डूबते हुए प्राणियों को निकलने के लिए आपकी भक्ति ही आलम्बन है, सम्बल है।

(20) **तं जहा दाणं पूया सील मुववासो चेदि चउव्हि सावथ धम्मो।।**

(आ.वीरसेन स्वामी)

दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावक के धर्म है।

(21) **ये जिनेन्द्र न पश्यन्ति, ये पूजवन्ति स्तुवन्ति न।**
निष्फलं जीवितं तेषां, तेषां धिकं च गृहाश्रमम्।।

–(आ. पद्मनंदी 'पंचविं')

जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का न दर्शन करते हैं न पूजन करते हैं और न स्तुति करते हैं उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

(22) **दाणु ण दिण्णउं मुनिवरह, णवि पुजिउ जिण णाहु।**
पंच ण वंदिय परम गुरू, किमु होसइ सिव लाहु।।

आ. योगिन्द्र देव।। (परमात्म प्रकाश)

जिसने मुनियों को दान नहीं दिया, जिनेन्द्र देव की पूजन नहीं की तथा पंच परमेष्ठी की वन्दना नहीं की, उसे मुक्ति का लाभ कैसे हो सकता है।

(23) **संसार छेद कारण वयणं सुहवयणमिदि जिणु द्दिट्ठं।**
जिण देवादिसु पूया सुह कायं तिय हवे चेट्ठा।।

(कुन्दकुन्दाचार्य : वारसाणुवेक्खा)

जिनदेव–शास्त्र–गुरू की पूजा, पात्रदान आदि क्रियाएँ (शुभकाय योग) एवं इनकी भक्ति आदि के वचन (शुभवचन योग) संसार छेद का कारण है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

(24) **पूय फलेण तिलोए सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो।।**

(कुन्दकुन्दाचार्य : रयणसार)–14)

जो शुद्ध भाव से श्रद्धापूर्वक पूजा करता है, वह पूजा के फल से तीनों लोकों में देवताओं के इन्द्रों से भी पूज्य हो जाता है।

(25) **श्री पतिर्भगवान् पुष्यादद् भक्तानां वः समीहितम्।**
यद् भक्तिः शुक्ल्कतामेति मुक्ति कन्या कर ग्रहे।।1।।

(आ. वादीभसिंह सूरिः क्षत्र चूड़ामणि)

जिस प्रकार किसी कन्या के साथ विवाह करने में पैसा सहायक होता है, ठीक उसी प्रकार जिन भगवान की भक्ति मुक्ति रूपी कन्या को प्राप्त करने में सहायक होती है।

(26) **जन्म–जन्मकृतं पापं, जन्मकोटिसमार्जितम्।**
जन्म–मृत्यु–जरामूलं, हन्यते जिनवंदनात्।। 5 ।।

(आ. पूज्यपाद : समाधि–भक्ति)

भगवान् जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने से जन्म–जन्म के किये पाप नष्ट हो जाते हैं तथा जन्म, मरण और बुढ़ापा आदि दुःख हैं जो, करोड़ों जन्मों में इकट्ठे किए हैं, भगवान् की वन्दना करने से नष्ट हो जाते हैं।

(27) **तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।**
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद् यावन् निर्वाणसम्प्राप्तिः।। 7 ।।

(आचार्य पूज्यपादः समाधिभक्ति)

हे भगवान् ! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक आपके दोनों चरण कमल मेरे हृदय में विराजमान रहें और मेरा हृदय आपके चरण कमलों में तल्लीन बना रहे।

(28) **पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूप–मन्धीकृतम्।**
जगत्सकल मन्यतीर्थ गुरू रूप दोषोदयैः।।
(गौतम गणधरः चैत्य भक्ति) ।। 35 ।।

हे स्वामिन् ! आपका वह अद्भुत रूप इन मिथ्यादृष्टियों से उत्पन्न होने वाले राग द्वेष मोह रूप मद्य दोषों से अंधे हुए समस्त जगत् को पवित्र करें।

(29) **एकापि समर्थयं जिनभक्ति दुर्गतिं निवारयितुम्।**
पुण्यामि च पूरयितुं, दातुं मुक्ति श्रियं कृतिनः।।
(आचार्य पूज्यपादः समाधिभक्ति)।।8।।

यह भगवान् जिनेन्द्रदेव की एक भक्ति ही समस्त नरकादिक दुर्गतियों से बचाने के लिए समर्थ हैः तथा समस्त पुण्यों को पूर्ण करने के लिए समर्थ है। जिनेन्द्र देव की यह भक्ति भव्य जीवों को मोक्ष लक्ष्मी देने के लिए भी पूर्ण समर्थ है।

(30) **अनन्तानंत संसार, संततिच्छेद कारणम्।**
जिनराज पदाम्भोज, स्मरणं शरणं मम।
(आ. पूज्यपादः समाधिभक्ति)।। 14 ।।

भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों का स्मरण करना अनंतानन्त संसार परंपरा के नाश करने का कारण है। अतः मैं भगवान के उन चरण कमलों की शरण लेता हूँ।

(31) **अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।**
तस्मात्कारूण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर।
(आचार्य पूज्यपादः समाधिभक्ति)।। 15 ।।

हे प्रभो ! इस संसार में आपके सिवाय और कोई रक्षा करने वाला नहीं हैं। यही समझकर मैंने आपकी शरण ली है। मैं केवल आपको ही शरण मानता हूँ। अतएव हे जिनेन्द्र देव ! मुझ पर करूणा कीजिए। इस संसार के दुःखों से मुझे बचाइये।

(32) **नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।**
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।
(आ. पूज्यपाद स्वामी)।। 16 ।।

हे प्रभो ! इन तीनों लोकों में वीतराग के सिवाय अन्य कोई देव आज तक किसी भी जीव की रक्षा करने वाला नहीं हुआ है, नहीं हुआ है, नहीं हुआ है। तथा वीतराग परमदेव के सिवाय अन्य कोई भी देव तीनों लोंको में आगे भी कभी किसी भी जीव की रक्षा करने वाला नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा। अतएव हे वीतराग देव ! आप ही मेरी रक्षा कीजिए।

(33) **जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।**
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदामेऽस्तु भवे भवे।

(आ. पूज्यपाद स्वामी समाधिभक्ति) ।। 17 ।।

हे भगवान् ! मेरी भक्ति श्री जिनेन्द्र देव में ही रहे, श्री जिनेन्द्र देव में ही रहे, श्री जिनेन्द्र देव में ही रहे। तथा वही आपके चरण कमलों की भक्ति भव–भव में मुझे सदा प्राप्त हो, सदा प्राप्त हो, सदा प्राप्त हो।

(34) **याचेऽहं याचेऽहं जिन। तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।**
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव।।
(आचार्य पूज्यवादः समाधिभक्ति)।। 18 ।।

हे जिनेन्द्रदेव ! मैं आपके दोनों चरण कमलों की याचना करता हूँ, याचना करता हूँ, याचना करता हूँ। हे स्वामिन् ! फिर भी मैं उन्हीं आपके चरण कमलों की भक्ति याचना करता हूँ, याचना करता हूँ, याचना करता हूँ।

(35) **तज्जिनेंद्र गुण स्तोत्रं तदविघ्नं प्रसिद्धये।।**
(आ. वीरसेन स्वामीः धवल पु.)

.... वह मंगल निर्विघ्न कार्य सिद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करना ही है।

(36) **मुद्योतिताखिलममोघमघप्रणाशम् ।।**
(गौतम गणधर : चैत्य भक्ति)

संपूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करनें वाले तथा पापों का नाश करने वाले हैं।

(37) **निर्वाणकारणमशेषजगद्धितार्थम्।।**
(गौतम गणधर : चैत्य भक्ति)

..... निर्वाण के कारण और सम्पूर्ण जग के हित करने वाले हैं।

(38) **वंदे सुरकिरीटाग्र मणिच्छायाभिषेचनम्।**
याः क्रमेणैवसेवन्ते, तदर्च्चाः सिद्धिलब्धये।। चै भ. 21 ।।

वैमानिक देवों के मुकुटों के अग्रभाग में लगे हुए मणियों की कांति से जिनके चरण कमलों का अभिषेक किया जाता है अर्थात् समस्त वैमानिक देवों के नमस्कार करने से उनके मुकुटों में लगे हुए बड़े–बड़े मणियों की कांति जिनके चरणकमलों पर पड़ती है। ऐसे भगवान् जिनेन्द्र देव की प्रतिमाओं को मैं मोक्ष प्राप्त करने के लिए नमस्कार करता हूँ।

(39) **इति स्तुतिपथातीत श्री भृतामर्हतां मम।**
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रन्वनिरोधिनी।। चै. भ. 22।।

भगवान् अर्हन्त देव, जिनकी स्तुति का वर्णन इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते है, ऐसी अपूर्व विभूति को धारण करने वाले भगवान् अरहंत देव की स्तुति मेरे समस्त कर्मों के आस्रव को निरोध करने वाली होवे।

अभिषेक और पूजा एक वैज्ञानिक छानबीन

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइल के अनुसार विज्ञान धर्म के बिना पंगु है और धर्म विज्ञान के बिना अन्धा है। सौभाग्य से जैन धर्म अनेक सिद्धान्त भी विज्ञान की कसौटी पर कसे गये और सदैव खरे उतरे है।

आज का युवा जो विज्ञान एवं विलासिता के भौतिक वातावरण में बड़ा हुआ है, अन्धानुकरण न करके यथार्थ को जानने मानने के लिए उत्सुक है।हर बात में वह प्रश्न एवं तर्क करता है। यहां युवा से मेरा अभिप्राय उस पूरे वर्ग से है, जो स्वयं को नई पीढ़ी कहता है। इस समूह ने समय–समय पर कई सार्थक प्रश्न उठाये है, जैसे– पूजा क्यों?, अभिषक क्यों?, पूजा मन्दिर में हीं क्यों, घर में क्यों नहीं?, मन्दिरों के विशाल होने पर मूल गंभारे गर्भगृह इतने छोटे क्यों?, मूल गंभारे में खिडकी क्यों नही होतीं?, मूल गंभारे में अंधेरा क्यों बनाये रखा जाता है?

इन प्रश्नों का वैज्ञानिक ढ़ंग से उत्तर देने का प्रयास किया है श्री पराशक्ति महिला महाविद्यालय कूरटालम तमिलनाडु की शोध छात्राओं ने। इन दिनों मद्रास में आयोजित एक प्रदशनी में वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि धर्म के मूल में भी विज्ञान उतना ही सक्रिय है, जितना किसी और क्षेत्र में। इन छात्राओं ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि मन्दिर की सारी क्रियाओं के पीछे वैज्ञानिक तथ्य है। हर क्रिया का तन, मन और वचन पर स्पष्ट और सीधा असर होता है। अपनी खोज से उन्हानें यह तय किया है कि हमारे मंदिर शिक्षा, कला, स्थापत्य एवं आकार–अभियांत्रिकी के केन्द्र है, परम शान्ति एवं चरम आनन्द के अचूक स्त्रोत है।

आगम में गर्भगृह के निर्माण एवं आकार के विविध ओर अनेक परिणाम तथा शैलियां बतायीं है। गर्भराज में विराजित जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा एवं गर्भगृह के आकार एवं परिणाम से गहरा सम्बन्ध है मूल गंभारे गर्भगृह एवं मूल प्रतिमा के आकार अनुपात के विशेष सम्बन्ध से मूल गंभारे की हवा का एक–एक अणु अधिकतम घूर्ण या आवर्तिता से कंपित होता है। जैसे हीं गंभारे के बाहर मन्त्रोचार किया जाता है, गंभारे के वायुकण/एयर मोलीक्यूल अधिकतम आविर्तिता/ मेक्जीमम एम्पलीट्यूड से कंपित हो उठते है, जिससे इटेंस साउंड/तींव्र नाद पैदा होता है इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए मूल गंभारे के आकार के बाहर रबर के एक टुकड़े पर चोट खाये काँपते ट्यूनिंग फोर्क को रखने पर स्वतः हीं गभांरे से ऊँ शब्द का सुमधुर नाद गहनता से उत्पन्न होता हैं।

जिन–जिन पदार्थो का अभिषेक के लिए उपयोग किया जाता है, प्रयोग करने पर शोध–छात्राओं ने पाया है कि, ''पीएच वेल्यू'' ज्यादा होतीं है, वे ही पदार्थों अभिषेक में प्रयुक्त होते है। ''पीञ्च वेल्यू'' ज्यादा होतीं है, उसका अर्थ यह हुआ कि उन पदार्थों में '' ऋण–आयनों'' में निगेटिव आयन्स की अधिकता है।

यह सिद्ध करने के लिए कि मूल गंभारे में ऋण–आयनों की अधिकता होतीं है आसवन विधि कंडेन्सर में थड में प्रयोग लीं जातीं है। इस विधि के द्वारा शोध–छात्राओं ने यह सिद्ध किया है कि मूल गभारा उर्जा का अनवरत स्त्रोत होता है। इन शोध–छात्राओं ने एक मूर्ति की अभिषेक के पहले एवं अभिषेक के बाद में, विद्युत–प्रतिरोधकता रेजिस्टेंस एवं विद्युत–चालक कंडेसिटी मापी। उन्हें लगा कि अभिषेक के पहले प्रतिरोध अधिक होता है और अभिषेक के बाद प्रतिरोध कम हो जाता है। एवं चालकता बढ़ जातीं है। एवं सम्पूर्ण गभारा उर्जा से भर जाता है।

अभिषेक पूजा, या मन्त्रोच्चार से ''ऋण–आयन'' निगेटिव आयन में वृद्धि होती है। ''निगेटिव आयन'' का आवेश प्राणदायक वायु ऑक्सीजन की हीमोग्लोबिन से मिलाने में सहायक होता हीमोग्लोबिन मानव–रूधिर का वर तत्व है, जिसमें ऑक्सीजन घुल कर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंचतीं है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि जहां ''ऋण–आयन'' नहीं होते हैं, वहां मृत्यु तक हो सकतीं है। ''ऋण–आयनों'' वाले ये स्थान स्वास्थयवर्धक होतें है। ऋण–आयनों की अधिकता समुद्री किनारों, झरनों के करीब या पहाड़ी स्थानों पर पायी जाती है। हमारे मन्दिर इसलिए ऐसे रमणीय और सार्थक स्थानों पर स्थित है। आज के वातावरण में, जबकि हर जगह विद्युत प्रदूषण ''इलेक्ट्रिकल पोल्यूशन'' ज्यादा है, इन ऋण–आयनों की कमी हरदम महसूस की जाती है, ये ही मूल्यवान ''ऋण–आयन'' मूल–गभारे में विशेष प्रकार के पदार्थों द्वारा मूर्ति का अभिषेक करने पर उत्पन्न होता है। चन्दन आदि वातावरण में नमीं बनाये रखने में सहायता करते हैं।

जैसे ही मूल गभारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, मूल गभारे में उपस्थित हवा में अधिकतम उर्जा के साथ कम्पन शुरू हो जाता हैं। मन्त्रोच्चार के पश्चात आरतीं, चँवर इत्यादि का प्रयोग होता है। आरतीं चँवर इत्यादि से गर्भगृह की हवा, जो उर्जा से असवेशित होतीं है, प्रार्थना करने वालो की तरफ आतीं हैं, जिससे श्वांस लेने से ऑक्सीजन को हीमोग्लोबिन में प्रविष्ट होने में मदद मिलतीं है।

ये आक्सीजन को फेफड़ों में टिस्सुओं तक लक जाते है और टिस्सुओं से कार्बन डायोक्साइड को फेफड़ों तक ले जाते हैं।

इस प्रकार इन शोध–छात्राओं ने निष्कर्ष लिये है कि

:: मूर्ति उर्जा भंड़ार एनर्जी रिजवोंयर का कार्य करतीं है।

:: गर्भगृह आयतन–अनुनादक वॉल्यूम रीजोनेटर है अतः ऊँ नाद की उत्पत्ति में सहायक है।

गर्भगृह की हवा, उर्जा के स्थानान्तरण ट्रान्सफर ऑफ एनर्जी में माध्यम का कार्य करती है।

यही कारण है कि मन्दिर में पूजा, अर्चना, भक्ति इत्यादि महत्वपूर्ण माने गये है, क्योंकि मन्दिर में उत्पन्न उर्जा मनुष्य को सुख-शान्ति एवं आत्मोन्नति की ओर बढ़ाती है। विशेष प्रकार से बनाये गये गर्भगृह में पूजा और अर्चना से आध्यात्मिक शक्ति की उत्प्रेरणा होती है। इन्हीं कारणों से गभारे में खिड़की नहीं रखी जाती, ताकि उर्जा सिर्फ मूल गंभारे के मुख्य दरवाजे से प्रार्थी पर सीधा प्रहार कर सके एवं गर्भगृह में बिजली के बल्ब इत्यादि द्वारा रोशनी नहीं की जाती, क्योंकि उससे ''ऋण-आयन'' समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण मन्दिर में एवं मूल गभारे में सिर्फ घी के दीपकों का प्रकाश ही किया जाता है।

इस तरह यह सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों द्वारा निरूपित/निर्धारित विधि-विधान बहुत गहरा अर्थ रखते हैं। हमारी संस्कृति न केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जन्मदात्री है, बल्कि आत्मोन्नति की अपूर्व सीढ़ी भी है। रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव एवं अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. रूडाल्फ किर ने बहुत से प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि मन्त्र में अपूर्व शक्ति है। एक रूसी वैज्ञानिक सोम्योनोव-डी-किरलियान ने ऐसी हाई फ्रींकवेन्सी फोटोग्राफी विकसित की है जिससे यह सिद्ध होता है कि मन्दिर की माला एवं घर की माला में अत्यधिक फर्क होता है अगर किसी के हाथ का चित्र ''किरलियान फोटोग्राफी'' से लिया जाय तो न सिर्फ हाथ का फोटो भी आयेगा, साथ ही साथ में हाथ के आस-पास जो किरणें है, उनका भी चित्र आयेगा। किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के छः महीने पहले ही बता दिया जा सकेगा कि आदमी बीमार होने वाला है। इस प्रकार मन्त्र, पूजा, आराधना, ह्रदय परिवर्तन की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया हैं।

भारतीय संस्कृति आज के विश्व में शान्ति प्रदान करने वाली संसकृति है और इसलिए महर्षि अरविनद को कहना पड़ा कि भारत भूमि केवल जमीन का टुकड़ा नहीं है, वह एक अपूर्व आत्मिक शक्ति है।

मन्दिर पूजा, मन्त्रोच्चार सभी आध्यात्मिक शान्ति एवं आत्मोत्थान के अपूर्व स्त्रोत हैं। अन्धानुकरण न कर यदि हम इन साधनों के गूढ़ रहस्यों को समझने की कोशिश करें तो शायद प्रभु परमेश्वर के इस विराट प्रेम-भरे जगत् से बहुत कुछ पाया जा सकता है एवं जीवन को अलौकिक बनाया जा सकता है।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते है कि ''जिनेन्द्र दर्शन और जिनेन्द्र पूजन'' श्रावकों को सभी प्रकार से उपादेय है, नित्य ही करणीय है। इसके बिना श्रावक के अशेष कर्तव्य अधूरे ही नहीं अपितु पूरे नहीं होते है। जिनेन्द्र पूजन किसी की परम्परा नहीं है अपितु दिगम्बर जैनों की प्राचीन आर्ष परंपरा है। जिसका अनुसरण प्रायः विभिन्न मतावलंबियों ने किया है व कर रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि यदि उन्होनें हमारा अनुकरण किया है। तो इसे हम उनकी ही परंपरा कहनें लगें और अपने आपको उनका अनुसरण कर्ता मानें। यदि ऐसी मान्यता है तो निश्चित ही हमारी अज्ञानता है। शास्त्रों की विशद गहराई में नहीं उतर पाये और न निष्पक्ष दृष्टि से उसे समझ पाये। जब तक पक्ष व्यामोह रहता है तब तक वस्तु तत्व का सही ज्ञान नहीं हो सकता है। पक्ष बुद्धि को संकीर्ण बना देता है तथा कभी-कभी वह सत्य से भी ओझल कर देता है अतः भले ही पूजन विषयक कोई क्रिया हमें पसन्द न हो किन्तु वह चैत्य भक्ति, अर्चा, पूजा आदि के रूप में आगम वर्णित है तो उसे मानना चाहिए उस पर श्रद्धा रखनी चाहिए।

उसे असत्य या आगम से बाह्य या विपरीत नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा कथन ही ''केवली, श्रुत और संघ का अवर्णवाद है और यह अवर्णवाद मिथ्यात्व के आस्त्रव का कारण है। यद्यपि पूजा और अर्चा में कुछ मौलिक भेद है।

प्रतिदिन अष्ट द्रव्य से की जाने वाली जिनेन्द्र भक्ति अर्चा कहलाती है और सिद्धचक्र नंदीश्वर आदि बृहद् रूप से समारोह पूर्वक की जाने वाली जिनेन्द्र भक्ति पूजन है ऐसा धवलाजी में वीरसेनाचार्य ने अंतर किया है फिर भी वर्तमान में अर्चा को ही पूजन कहा जाता है। इसी कारण हमने सामान्यतः इस लेख में दोनों को भिन्न-भिन्न नाम न देकर एक ही नाम दिये हैं।

हमारा किसी पंथ या परंपरा विशेष का किंचित् और कदाचित् भी आग्रह नहीं है। किन्तु हमारा आगम का पक्ष है। आगमानुसार सभी कर्तव्य पथ पर बढ़े इसी दृष्टिकोण से यह लेख के संक्षेप में लिखा है। त्रुटियों को साधुजन क्षमा करें।

उपसर्ग विजेता प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विद्या पीठ भिण्ड द्वारा प्रकाशित साहित्य।

A संस्कृत टीका साहित्य
1. वारसाणुवेक्खा (सर्वादय टीका संस्कृत) 150/–
2. रयणसार (रत्नत्रयवर्धीनी टीका) 150/–

B शोध पूर्ण साहित्य
3. शुद्धोपयोग 25/–
4. सम्यग्दर्शन 25/–
5. आगम चक्खू साहू 20/–
6. सल्लेखना से समाधि 30/–
7. संत साधाना के प्रेरक प्रसंग 15/–
8. परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, तमिल, कननड़, इंग्लिश) 40/–
9. सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म 30/–
10. तीर्थंकर दिव्य दर्शन 30/–
11. तीर्थंकी दर्शन
12. व्यसन विचार (हिन्दी, मराठी, इंग्लिया) 25/–
13. फूल नहीं है कांटे
14. संस्कार सुरभि 15/–
15. जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन 10/–
16. आध्यात्मिक शंका समाधान 30/–
17. आध्यात्मिक तत्व–चर्चा 15/–

C चिंतन साहित्य
18. चैतन्य चिंतन भाग – 1, 2, 3 15/–

D बालकोपयोगी साहित्य–
19. बाल विज्ञान भाग–1,2,3 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़) 10/–
20. बाल विज्ञान भाग–4 10/–
21. कर्म विज्ञान भाग – 1 (हिन्दी, इंग्लिश) 10/–
22. कर्म विज्ञान भाग – 2,3 10/–

E कथा साहित्य–
23. नैतिक कथा मंजूषा भाग–1,2,3 15/–

F अनुवाद साहित्य
24. वारसाणुवेक्खा
25. परमस्त्रार्चना 20/–

G पद्य साहित्य
27. भावों के विशुद्ध क्षण 15/–
28. मुक्ताजंली भाग 1,2
29. नव देवता निर्माण क्षेत्र पूजा

H संकलित/सम्पादित साहित्य
30. साधना से समाधि 20/–
31. विमल नित्य पाठवली 25/–
32. आराधना 10/–
33. सुभाषित सहस्त्रं 40/–
34. आप्त अर्चना
35. मानतुंग की अमरभक्ति (सचित्र भक्तामर)
36. साधना 10/–
37. अनुप्रेक्षा 10/–
38. जिनागम दीप 151/
39. सम्मेद शिख विधान
40. चारित्र शुद्धि व्रत 25/–
41. साधना के सोपान
42. करूणामूर्ति संत
43. तपस्वी सम्राट
44. यज्ञोपवित विधि

I एकांकी/नाटक साहित्य
45. सम्य मित्र सम्य दृष्टि
46. प्रद्युन्न हरण

J आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर आधारित साहित्य
47. विरागाभिनंदन अभिनंदन
48. निस्पृही संत भाग–1,2 60/–
49. विराग सेतु (महाकाव्य) 100/
50. संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागरजी 64/–
51. कमल के महाकमल
52. घटनायें ये जीवन की 80/–
53. दिगम्बरत्व के चितेरे 150/
54. विराग सिंधु की ऊर्मिया 15/–
55. विराग वाटिका 41/–
56. भक्ति की झंकार 25/–

K प्रवचन साहित्य
57. धर्म पियूष 30/–
58. ऐसे चलो मिलेगी राह 40/–

59. दूर नहीं है मंजिल 30/–
60. उड़ रे पंछी
61. तीर्थंकर वर्धमान 15/–
62. पहले देव पूजा फिर काम पूजा 25/–
63. तीर्थंकर ऐसे बनो 85/–
64. तट की ओर
65. सिर्फ दो प्रवचन 10/–
66. इष्टोपदेश
67. मानतुंग की अमर भक्ति 150/
68. कल्याणक महोत्सव 20/–
69. दान तीर्थ 20/–
70. धर्म के दश सोपान 20/–
71. जीवों पर दया करो– शुद्ध शाकाहार करो 20/–
72. बुराईयाँ ही जेल – अच्छाईयां ही मुक्ति 10/–
73. प्रवचन वर्षा 15/–
74. कर्तव्य मेव कर्तव्य 20/–
75. श्रृद्धा प्रसून
76. मोक्ष की राहें
77. विरागामृत
78. समाधि तंत्र
79. समयोचित् शिक्षाये भाग 1,2,3 20/–
80. विराग मंथन 5/–
81. रजत पुष्प 51/–
82. कहानी सबसे सुहानी 30/–
83. अक्षय निधि 10/–
84. संस्कार की लहरें 10/–
85. चलो चले प्रभु दर्शन को 20/–
86. आध्यात्मिक पर्व (दशलक्षण धर्म) 30/–
87. घर घर की कहानी
88. पद्मनंदि पंचविंशति : अधिकार 1 धर्मोपदेशामृतम्
89. पद्मनंदि पंचविंशतिःअधिकार 2 दानोपदेशम्
90. पद्मनंदि पंचविंशति : अधिकार 3 अनित्यपत्राचाशत्
91. पद्मनंदि पंचविंशति : अधिकार 4 एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम्
92. पद्मनंदि पंचविंशति : अधिकार 6 उपासक संस्कारः
93. पद्मनंदि पंचविंशति : अधिकार 7 देशोव्रतोद्योतनम्
94. पद्मनंदि पंचविंशति : अधिकार 8,9 सिद्धस्तुति तथा आलोचना
95. पद्मनंदी पंचविशति : अधिकार
96. मेरी भावना प्रवचन
97. फार यूथ प्रोगेस
98. आचार्य विरागसागर साहित्य दर्शन

साहित्य प्राप्ति स्थानः

1. श्री सम्यक्ज्ञान विराग विद्यापीठ, चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिंड (म.प्र.) सम्पर्क सूत्रः पं. वीरेन्द्र जैन मो.–9754803220

2. आचार्य श्री विरागसागर विद्यापीठ (बी.एड. कॉलेज) पुष्प विहार कॉलोनी, बीना – 470113 जिला–सागर (म.प्र.) सम्पर्क सूत्रः प्रदीप शाह मो.– 9425135816

3. विराग फाउण्डेशन C/o श्री अरूण कोटड़िया, उस्मानपुरा, अमदाबाद (गुजरात) 380013 सम्पर्क सूत्रः अरूण कोटड़िया मो.– 9825900124

4. श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह 12–B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड़, मेहसाना–2 (गुजरात) सम्पर्क सूत्रः श्री भूपेन्द्र शाह मो.– 9898494914, 9429452020

पुण्यार्जक

श्री विजय कुमार एवं श्रीमती संगीता जैन
सुपुत्रः श्री भागचन्द जैन एवं श्रीमती मैना देवी जैन

मै. भागचन्द विजयकुमार जैन
जूनियाँ गेट, केकड़ी (अजमेर-राज.)

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज द्वारा लिखित, संपादित, संकलित एवं प्रवचन संबधित साहित्य यहाँ हर समय उपलब्ध है।

प्राप्ति स्थान :
श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ
बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)